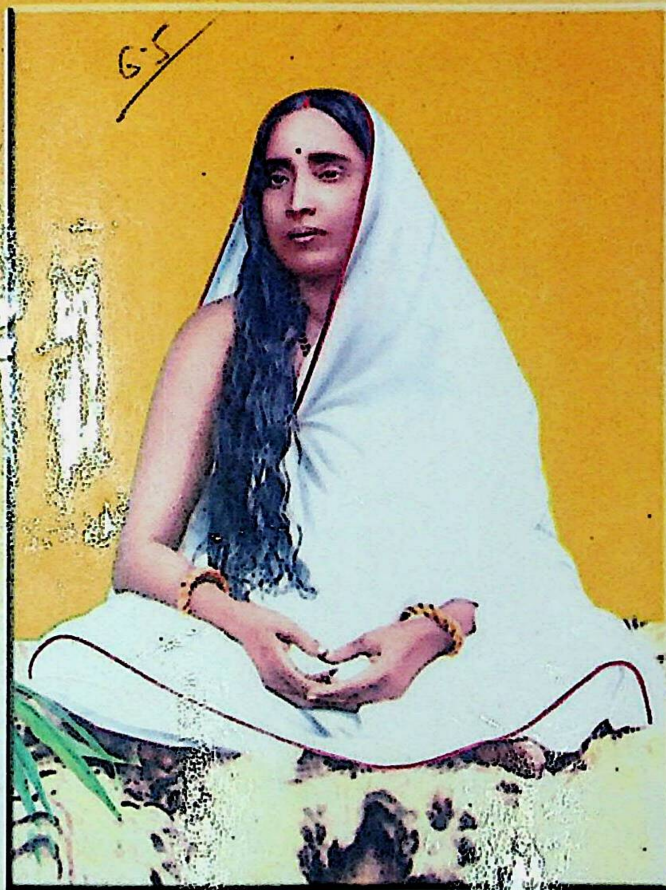


'मैं माँ हूँ—सबकी माँ'

‘मैं माँ हूँ—सबकी माँ’

श्रीमाँ सारदादेवी के जीवन की कुछ घटनाओं का संकलन



रामकृष्ण मिशन इन्स्टीट्यूट ऑफ कल्चर
गोल पार्क : कोलकाता - ७०० ०२९
E-mail : rmic@vsnl.com; *Website* : www.sriramakrishna.org

Published by

Swami Prabhananda
Secretary
The Ramakrishna Mission Institute of Culture
Gol Park, Kolkata-700 029

First Edition : September 2004 : 16,000
Second Impression : December 2004 : 50,000
Total Impression : 66,000

ISBN : 81-87332-34-4

Price : Rupees Five only

Printed at

Manasi Press
73, Sisir Bhaduri Sarani
Kolkata 700 006

o *A Subsidized Publication of the Institute*

प्रकाशक का निवेदन

रामकृष्ण-विवेकानन्द के विचारों को सहज-सरल भाषा में जनसाधारण तक पहुँचाना ही इस संस्थान का प्रमुख कार्य है। इससे पहले भी हम कुछ पुस्तिकाएँ सुलभ मूल्य पर प्रकाशित कर चुके हैं, यथा 'सबार स्वामीजी', 'विश्व वरेण्य श्रीरामकृष्ण', 'भारतेर निवेदिता'।

अब प्रस्तुत है श्रीमाँ सारदादेवी सम्बन्धित यह पुस्तिका। श्रीमाँ के जीवन की कुछ प्रमुख घटनाओं को हमने इसमें एक साथ सजाया है। श्रीमाँ के आडम्बरहीन जीवन को हमने आडम्बररहित रूप में ही प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। बंगला भाषा की पुस्तिका *'आमि मा, सकलेर मा'* का यह हिन्दी अनुवाद है। बँगला से हिन्दी में अनुवाद कोलकाता की श्रीमती केया मुखर्जी ने किया है तथा कम्पोज़िग व सम्पादन अद्वैत आश्रम, कोलकाता के स्वामी उरुक्रमानन्द ने किया है। हम इन दोनों के प्रति हृदय से अपना आभार व्यक्त करते हैं। आशा है, अन्य पुस्तिकाओं की तरह यह पुस्तिका भी लोकप्रिय होगी।

कोलकाता ७०००२९

स्वामी प्रभानन्द

विषय सूची

श्रीमाँ सारदादेवी के जीवन की कुछ घटनाएँ

बाँकुड़ा जिला के अन्तर्गत एक छोटा-सा गाँव है—जयरामबाटी। इस गाँव के श्री रामचन्द्र मुखोपाध्याय तथा श्यामासुन्दरीदेवी की प्रथम सन्तान थीं—श्रीमाँ सारदामणिदेवी। वंशानुक्रम में श्रीरामचन्द्र के उपासक श्री रामचन्द्र मुखोपाध्याय अत्यन्त धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। पत्नी श्यामासुन्दरीदेवी भी बिल्कुल उन्हीं की तरह थीं। माता-पिता के बारे में स्वयं सारदादेवी ने कहा है—'मेरे पिता-माता बहुत अच्छे थे। पिता बहुत भक्त थे राम के। निष्ठावान—अन्य वर्ण का दान नहीं लेते थे। माँ कितनी दयावान थीं—लोगों को कितना खिलाती-पिलातीं—और कितनी सरल! ... पिताजी को तम्बाकू पीना अच्छा लगता। वे इतने सरल और मिलनसार थे कि कोई भी घर के सामने से जाता तो उसे बुलाकर बिठाते और कहते, "बैठो भाई, तम्बाकू पियो।" ऐसा कहकर वे स्वयं ही चिलम में तम्बाकू भरकर देते। पिता-माता तपस्वी न हों तो क्या (भगवान्) जन्म लेते हैं?'

* * * *

समाज में उन दिनों शहरों की ओर जाने का झुकाव था। गाँवों से अर्थ-उपार्जन के लिए लोग शहरों को जा रहे थे। रामचन्द्र मुखोपाध्याय भी आर्थिक समृद्धि के लिए कोलकाता पहुँचे। पति काम की तलाश में शहर गये इसलिए श्यामासुन्दरीदेवी भी अपने पीहर शिहड़ चली गयीं। जयरामबाटी के करीब ही है यह शिहड़। वहाँ श्यामासुन्दरीदेवी को एक अद्भुत अनुभूति हुई। एक दिन अस्वस्थ अवस्था में अन्यान्य ग्रामवधुओं की तरह ही श्यामासुन्दरीदेवी भी पोखर के किनारे शौच के लिए गयीं।

प्रायः बेहोशी की अवस्था में कुम्हारों के मिट्टी सुखाने के स्थान पर झनझन शब्द से वे चौंक उठीं। देखा,सामने के बेल-वृक्ष से एक शिशु-कन्या उतरकर आई और अपने नरम कोमल दोनों हाथों से श्यामासुन्दरीदेवी के गले से लगकर बोलीं, 'मैं तुम्हारे घर आई हूँ, माँ।' श्यामासुन्दरीदेवी बेहोश हो गयीं। जब उन्हें होश आया तो उन्हें ऐसा अनुभव हुआ मानो उस नन्हीं बच्ची ने उनके गर्भ में प्रवेश किया हो।

इसके पश्चात् ईसवी संवत १८५३ की २२ दिसम्बर बृहस्पतिवार को सारदादेवी का जन्म हुआ। (बँग्ला तारीख : ८ पौष, १२६० बंगाब्द, कृष्णा-सप्तमी तिथि, समय : दो पहर एक पल।)

* * * *

गरीब के परिवार में सारदादेवी का जन्म हुआ, किन्तु बाल्यकाल से ही वे दया की प्रतिमूर्ति थीं। ईसवी संवत् १८६४-६५ में भयंकर अकाल पड़ा। सारे देश में अन्न को लेकर हाहाकार मच गया। रामचन्द्र मुखोपाध्याय निर्धन होने के बावज़ूद अत्यन्त दयालु थे। अकाल के अन्नकष्ट से वे अत्यन्त व्यथित हुए। अपने लिए बचाकर जो धान जमा किया था, उसीसे उन्होंने अन्नछत्र खोला। चावल-दाल मिलाकर खिचड़ी पकाते, जिसे समूह में आकर लोग खाते। भूखे लोगों की पत्तल पर जब गरमागरम खिचड़ी परोसी जाती तो नन्ही सारदा अपने नन्हें हाथों से पंखे से हवा करती ताकि खिचड़ी ठण्डी हो जाए। ऐसा करने के लिए उसे कोई नहीं कहता, वह स्वयं ही करती।

* * * *

रामचन्द्र मुखर्जी की कुछेक बीघा ज़मीन थी, परन्तु उसमें जो धान उपजता वह पर्याप्त नहीं था। इसीलिए परिवार चलाने के लिए रामचन्द्र पुरोहित का काम तथा कपास की खेती करते। श्यामासुन्दरीदेवी गोदी की बच्ची सारदा को खेत में लिटाकर कपास चुनती। कुछ बड़ी होने पर

सारदा इस काम में माँ का हाथ बँटातीं। माँ-बेटी दोनों उस कपास से बिक्री के लिए जनेऊ बनातीं। छोटे भाइयों की देखभाल करना उनका और एक काम था। भाइयों को लेकर वे आमोदर नदी में स्नान करने जातीं। कभी गले तक पानी में उतरकर गायों के लिए एक खास किस्म की घास काटतीं। खेत में खेत-मजूरों के लिए मुरमुरे भी वे ही ले जातीं। बचपन से ही वे शान्त और बुद्धिमती थीं। कामकाज में खूब उत्साही थीं। किसी काम के लिए उन्हें कहना नहीं पड़ता था—सारे काम वे स्वयं बड़े सुन्दर तरीके और करीने से करतीं। सहेलियों के साथ वे खेल-कूद भी करतीं, परन्तु खेल में उनके साथ किसी का झगड़ा नहीं होता था। बल्कि अन्य लड़कियाँ झगड़तीं तो वे आकर उनका झगड़ा मिटा दिया करतीं। खेलों में उनका प्रिय खेल था—काली और लक्ष्मी की मूर्तियाँ बनाकर फूल और बेलपत्रों से उनकी पूजा करना।

* * * *

सारदा ने उन दिनों पाँच वर्ष की उम्र पारकर छठे वर्ष में प्रवेश किया था। और उधर दक्षिणेश्वर में कामारपुकुर के गदाधर चट्टोपाध्याय —भविष्य के श्रीरामकृष्ण—साधना की तेज धार में बहे जा रहे थे। जगज्जननी के दर्शन के बिना वे रुकनेवाले नहीं थे। अन्ततः एक दिन व्याकुलता की वेदना में माँ के हाथ के खड्ग से जब माँ के ही चरणों में आत्म-आहूति देने को वे उद्यत हुए तो माँ ने दर्शन दिये। इसके बाद से जगज्जननी उनके लिए जीवन्त हो उठीं—वे मन्दिर की प्रस्तर प्रतिमा न रहीं। माता और पुत्र की एक अपूर्व दिव्यलीला दक्षिणेश्वर के मन्दिर में अभिनीत होने लगी—ऐसा खेल जगत् ने कभी देखा न था। किन्तु आम आदमी के लिए इस दिव्यलीला को समझ पाना सम्भव नहीं था। उनकी दृष्टि में गदाधर पागल साबित हुए। गदाधर की मस्तिष्क-विकृति की खबर कामारपुकुर भी जा पहुँची। माता चन्द्रमणिदेवी उन्हें दक्षिणेश्वर से गाँव ले आईं और उनके ईश्वर-पागल मन को परिवारमुखी बनाने के

लिए उनके विवाह की चेष्टा करने लगीं। अत्यन्त गुप्त रूप से वधू की तलाश होने लगी कि गदाधर को पता लगे तो कहीं नाराज न हो जाए। परन्तु जब उन्हें पता लगा तो वे नाराज तो नहीं हुए, बल्कि घर में वैवाहिक अनुष्ठान होने से शिशु जिस प्रकार आनन्दित होते हैं, उसी प्रकार आनन्द मनाने लगे। किन्तु काफी ढूँढ़ने पर भी मनचाही वधू मिल ही नहीं रही थी। सभी उस वक्त अवाक् हो गये जब गदाधर बोल उठे—'इधर-उधर खोज कर क्या होगा? जयरामबाटी के रामचन्द्र मुखर्जी के घर जाकर देखो, विवाह की वधू तो वहाँ चिह्नित करके रखी है।' अर्थात् सारदादेवी उन्हीं के लिए निर्दिष्ट हैं, ठीक जिस प्रकार वृक्ष के किसी फल को चिह्नित कर बिचाली में लपेटकर देवता के चढ़ाने के लिए अन्य फलों से अलग करके रखा जाता है।

* * * *

इसके कुछ वर्ष पूर्व शिशु सारदा ने भी बिना कुछ समझे-बूझे एक दिन श्रीरामकृष्ण को पतिरूप में चुन लिया था। शिहड़ में सारदादेवी का ननिहाल था। श्रीरामकृष्ण के भाँजे हृदयराम मुखोपाध्याय का घर भी शिहड़ में था। गाँव के धार्मिक संगीतानुष्ठान में उपस्थित बहुत-से लोगों में गदाधर भी थे। और थोड़ी दूर पर किसी एक महिला की गोद में शिशु सारदा भी बैठी हैं। गाना समाप्त होने पर दिल्लगी करते हुए उक्त महिला ने सारदा से पूछा, 'बताओ तो यहाँ जो इतने लोग हैं उनमें से किससे विवाह करने की तुम्हारी इच्छा होती है?' शिशु सारदा ने झट दोनों हाथ उठाकर श्रीरामकृष्ण को दिखला दिया। इस प्रकार किसी दैवी-प्रेरणा से दोनों ने परस्पर को चुन लिया था। अन्ततः १२६६ बंगाब्द के बैसाख महीने के आखिर में चौबीस वर्षीय गदाधर के साथ छः वर्षीया सारदामणि का विवाह सम्पन्न हुआ। तत्कालीन प्रथा के अनुसार वर-पक्ष ने कन्या-पक्ष को दहेज में तीन सौ रुपये दिये। विवाह के बारे में बाद में श्रीमाँ कहतीं, 'महीना तो याद नहीं पर जब मेरा

विवाह हुआ, उन दिनों खजूर के दिन थे। दस दिनों में मैं कामारपुकुर गयी तो वहाँ मैंने ढेर सारी खजूर चुनी।'

* * * *

विवाह के पश्चात् तेरह-चौदह वर्ष की आयु में सारदादेवी कामारपुकुर जा कर रहीं। श्रीरामकृष्ण उन दिनों दक्षिणेश्वर में साधना में मग्न थे। ससुराल से सटा था विशाल हलधर पोखर। चट्टोपाध्याय परिवार सहित सारे गाँव का प्रयोजन इसी पोखर के पानी से पूरा होता। इधर नववधू छोटी-सी सारदा मन ही मन सोचतीं कि अकेली-अकेली नहाने कैसे जाऊँ? सोचते-सोचते ही देखती हैं कि कहीं से अचानक आठ लड़कियाँ आ गयीं। उनके साथ श्रीमाँ भी राह पर उतर आयीं। लड़कियों में चार उनके आगे और चार उनके पीछे चलतीं। अब उन्हें डर नहीं लगता। श्रीमाँ हलधर पोखर में स्नान करतीं, वे लड़कियाँ भी करतीं। फिर उसी प्रकार घर लौट आतीं। जितने दिन श्रीमाँ कामारपुकुर में रहीं, उतने दिन ऐसा ही होता। वे सोचतीं, कौन हैं ये लड़कियाँ जो स्नान के समय रोज आ जाती है? किन्तु वे कुछ समझ नहीं पायीं, न ही उन्होंने कभी उनसे कुछ पूछा।

* * * *

कामारपुकुर में एकाकी रहने के दौरान श्रीमाँ पढ़ने-लिखने की चेष्टा करतीं। उन्होंने खुद कहा था, 'कामारपुकुर में लक्ष्मी (श्रीरामकृष्ण की भतीजी) और मैं कुछ-कुछ "वर्णपरिचय" पढ़ते। भाँजा (हृदय) पुस्तक छीनकर कहता, "स्त्रियों को पढ़ना-लिखना नहीं सीखना चाहिए। अन्त में क्या नाटक-उपन्यास पढ़ना है?" लक्ष्मी अपनी पुस्तक नहीं छोड़ती, कसकर पकड़े रखती। मैंने चुपचाप एक आने में एक और पुस्तक मँगवाई। लक्ष्मी पाठशाला में पढ़कर आती और आकर मुझे पढ़ाती।

... ठीक से सीखना दक्षिणेश्वर में हुआ। ठाकुर* उन दिनों चिकित्सा के लिए श्यामपुकुर में थे। मैं अकेली-अकेली थी। भव मुखर्जी की एक लड़की स्नान करने आती। बीच-बीच में वह मुझे रोज पाठ देती और लेती। मैं उसे, बगीचे से हमारे यहाँ जो साग-सब्जी आती, काफी मात्रा में देती।' बाद में श्रीमाँ रामायण इत्यादि ग्रन्थ ठीक से पढ़ लेतीं, परन्तु अधिक लिख नहीं पातीं।

श्रीमाँ का यह विद्यानुराग हमेशा ही था। श्रीमाँ ने नवम्बर १८९८ में निवेदिता के स्कूल का उद्घाटन किया था और कहा था : 'मैं आशीर्वाद देती हूँ कि इस विद्यालय पर जगन्माता का आशीर्वाद हो तथा यहाँ से शिक्षित बालिकाएँ आदर्श बालिकाएँ बनें।' इस विद्यालय की छात्राओं के प्रति श्रीमाँ की बड़ी स्नेह दृष्टि थी। जो लड़कियाँ पढ़तीं, श्रीमाँ उन सबकी विशेष प्रशंसा करतीं यहाँ तक कि अंग्रेजी सीखने को भी उन्हें उत्साहित करतीं। उन्नीसवीं शताब्दी के आखिर में एक अशिक्षित ग्रामीण महिला की ऐसी दूरदृष्टि तथा उदार मनोभाव सचमुच विस्मयकारी हैं।

* * * *

कामारपुकुर में छोटी-सी सारदा को विभिन्न तरीकों से शिक्षा देकर श्रीरामकृष्ण गढ़ने लगे। पहले उन्होंने अपनी मुखापेक्षी किशोरी का हृदय अपने प्रेम से जीता, फिर उनपर अपने अनुभवों की ज्ञानराशि की वर्षा की। और सारदादेवी भी श्रद्धा सहित तथा खुले दिमाग से यह सब ग्रहण करने लगीं। श्रीरामकृष्ण एक ओर अपने त्यागोज्ज्वल जीवन के आदर्श उनके सामने रखते, साथ ही साथ लौकिक व्यवहार की पेचीदगियाँ भी उन्हें सिखाते। उच्च धर्मजीवनलाभ

* 'ठाकुर' अर्थात् श्रीरामकृष्ण। रामकृष्ण संघ और भक्तमण्डली को आम तौर पर 'ठाकुर' ही कहा जाता। इस पुस्तक में कई जगह हमने भी यही कहा है।

के लिए किस प्रकार चरित्र-गठन किया जाए, यह सिखलाया तो साथ ही साथ यह भी सिखाया कि किस प्रकार अपने आत्मीय स्वजनों के साथ व्यवहार किया जाए, रास्ते में गाड़ी में किस प्रकार चला जाए, यहाँ तक कि दीये की बत्ती को किस प्रकार रखा जाए, यह भी सिखाया। पति के इस देहबुद्धिहीन, स्वार्थशून्य प्रेम ने श्रीमाँ को विभोर कर रखा था। बाद में उन्होंने स्वयं स्त्री भक्तों से कहा भी : हृदय में आनन्द का घट मानो स्थापित हो गया हो, उस समय से मुझे हमेशा ऐसा अनुभव होता। उस धीर, स्थिर, दिव्य उल्लास से उनका अन्तर कितना परिपूर्ण रहता, यह कहकर नहीं समझाया जा सकता।'

* * * *

श्रीरामकृष्ण हमेशा श्रीमाँ को संसार की अनित्यता की बात कहते। कहते, 'सियार-कुत्तों की तरह बच्चे पैदा कर क्या होगा?' श्रीमाँ की माता के अनेक बच्चे हुए थे, उनमें से कुछ की मौत हो गयी थी। सबकी बड़ी दीदी होने के कारण श्रीमाँ ने उन्हें गोद में भी खिलाया था और फिर उनका मृत्यु-शोक भी भोगा। इसीलिए श्रीरामकृष्ण कहा करते : 'तुम्हें बहुत तकलीफ हुई है। देखो, कितना दुःख और कष्ट। हंगामे की ज़रूरत ही क्या। वह सब न होता तो ठाकुरानी होती और ठाकुरानी रहती।'

एक दिन सुबह श्रीमाँ घर के भीतर गोबर-मिट्टी का लेप दे रही थीं और श्रीरामकृष्ण रंगरेली करते-करते श्रीमाँ से बातें कर रहे थे। अचानक श्रीरामकृष्ण ने कहना शुरू किया : 'बेटे के अन्नप्राशन में जिस प्रकार कमर में करधनी पहनकर नाचोगी, वही बेटा मर जाएगा तो उसी कमर को जमीन पर पटकर पछाड़ खाकर रोना पड़ेगा।' लज्जाशीला माँ चुपचाप सब सुन रही थीं किन्तु 'सबकी माँ' होने के लिए जिनका आविर्भाव हुआ हो, बार-बार पुत्र-मृत्यु की बात सुनना उन्हें ज्यादा देर अच्छा नहीं लगा। धीरे-से एक बार वे कह उठीं, 'सब ही तो नहीं मर

जाएँगे?' उनकी बात पूरी होते न होते श्रीरामकृष्ण चीख उठे, 'ओरे, जात-साँप की पूँछ पर पैर पड़ गया है रे, जात-साँप की पूँछ पर पैर पड़ा है ! ओ माँ, मैं कहता हूँ, सीधी-सादी भली मानुष है, कुछ भी नहीं जानती—पेट के भीतर सब है! कहती है, सब ही तो नहीं मर जाएँगे?'—वे इस प्रकार चीख उठे कि श्रीमाँ शरमाकर भाग गयीं।

बाद में श्रीरामकृष्ण ने श्रीमाँ को आश्वस्त कर कहा था : 'तुम्हें ऐसे रत्न-पुत्र दे जाउँगा जो सिर काटकर तपस्या करने से भी मनुष्य को नहीं मिलते। बाद में देखना, इतने बेटे तुम्हें माँ कहकर पुकारेंगे कि तुम्हारे लिए सम्भालना भार हो जाएगा।'

* * * *

रसिकश्रेष्ठ श्रीरामकृष्ण नाना आमोद-प्रमोद से दिनों को भरे रखते। इस प्रसंग में श्रीमाँ ने एक घटना का उल्लेख कर कहा, 'कामारपुकुर में मैं और लक्ष्मी की माँ खाना पकाती थे। एक दिन ठाकुर और हृदय भोजन करने बैठे। लक्ष्मी की माँ भोजन पकाने में सिद्धहस्त थी। उसने जो पकाया था उसे खाकर बोले, "ओ हृदू, ये जिसने पकाया है, रामदास वैद्य है।" मैंने जो पकाया था उसे खाकर बोले, "और यह पकाया है छिनाथ सेन ने।" श्रीनाथ सेन नीम-हकीम। अर्थात् लक्ष्मी की माँ हुई रामदास वैद्य और मैं हुई श्रीनाथ सेन—नीम हकीम। सुनकर हृदय बोला, "सो तो है। पर तुम्हारे नीम हकीम तुम्हें हर वक्त मिलेंगे —बदन दबाने से लेकर पैर दबाने तक। बस बुलाना भर होगा। रामदास वैद्य—उसकी "विजिट" पर खर्च बहुत है, उसे तो हर समय नहीं बुलाया जा सकता । और लोग तो पहले नीम हकीम को ही बुलाते हैं—वह तो तुम्हारा सब समय का मित्र है।" ठाकुर बोले, "सो तो है, सो तो है । यह हर समय (उपलब्ध) है "।' श्रीमाँ कहा करतीं, 'उन्हें (श्रीरामकृष्ण को) कभी निरानन्द नहीं देखा। पाँच वर्ष का बच्चा हो या कोई बूढ़ा, सब के साथ ही मिलकर उन्हें आनन्द होता। श्रीमाँ भी थीं

आनन्दरूपिणी। उनका शान्त-स्निग्ध आनन्द सभी के अन्तर को स्पर्श करता किन्तु कभी चपल या उद्वेलित नहीं होता। स्वयं अपने विषय में श्रीमाँ ने कहा है—'सभी कहते इसमें अशान्ति है, उसमें अशान्ति है। पर मैंने तो किसी अशान्ति को जाना ही नहीं।'

* * * *

१२७४ (बंगाब्द) के अगहन में श्रीरामकृष्ण कामारपुकुर से दक्षिणेश्वर लौट गये। श्रीमाँ लौट आयीं जयरामबाटी। दिन पर दिन और महीने पर महीने बीत गये। दक्षिणेश्वर जाकर श्रीरामकृष्ण साधना में ऐसे डूबे कि फिर नहीं आये। उनके बारे में नाना उड़ती-उड़ती खबरें कामारपुकुर और जयरामबाटी में आतीं। सुनने में आया कि दक्षिणेश्वर के मन्दिर में वे प्राय: उन्माद की अवस्था में विचरण करते हैं। उनके मुँह में 'माँ' 'माँ' शब्द है और दुनिया का कोई होश नहीं। इसीलिए मुहल्ले की स्त्रियों में सारदा थीं 'पागल की बीवी'। वे सहानुभूति जताते हुए कहतीं, 'ओ माँ, श्यामा की बेटी का पागल जमाई के साथ विवाह हुआ है।' ये सारी अवाँछित उक्तियाँ श्रीमाँ के हृदय में शूल की तरह चुभतीं। यह सब सुनना पड़ेगा यह सोचकर न वे किसी के घर जातीं, न मुहल्ले में किसी से मेल-मुलाक़ात रखतीं। दिन-रात स्वयं को काम में मशगूल रखतीं और मन ही मन सोचतीं : 'जिसे देवस्वरूप देखा था, वह क्या सचमुच पागल हो गये हैं? विश्वास ही नहीं होता।' कभी-कभी मन जब खूब बेचैन हो उठता तो वे गाँव की भक्तिमती 'भानुबुआ' के घर के बरामदे में आँचल बिछा लेटी रहतीं। शुद्धस्वभाव भानुबुआ की स्वाभाविक अन्तर्दृष्टि थी। श्रीमाँ की माता श्यामासुन्दरी से उन्होंने कहा था, 'बहू, तुम्हारा जमाई तो शिव है, साक्षात् कृष्ण—कहे देती हूँ, आज विश्वास करो या न करो, बाद में करना पड़ेगा।' अत: सारे गाँव में भानुबुआ का घर ही एकमात्र ऐसी जगह थी जहाँ श्रीमाँ को शान्ति मिलती।

इस प्रकार घर बैठे बीत गये। अन्त में किशोरी सारदा का धैर्य

खत्म हो गया। उन्होंने तय किया—'सभी ऐसा कहते हैं, मैं जाकर एक बार देख आऊँ वे कैसे हैं?'

१२७८ (बंगाब्द) साल के चैत्र महीने में एक पर्व के उपलक्ष्य में जयरामबाटी अँचल की कुछ स्त्रियाँ गंगा-स्नान के लिए दक्षिणेश्वर जा रही थीं। श्रीमाँ की इच्छा हुई कि वे भी उनके साथ जायें। लज्जावती कन्या पिता से अपने मन की बात कह नहीं पाती। अन्तत: एक अन्य लड़की ने रामचन्द्र मुखोपाध्याय से श्रीमाँ के मन की बात कही। पिता ने पुत्री की इच्छा और उसके मन के कष्ट को समझा। एक शुभ घड़ी वे और सारदा दक्षिणेश्वर के लिए रवाना हुए।

बड़ा लम्बा रास्ता था। तारकेश्वर होते हुए कोलकाता आ रहे थे वे। पहले दो-तीन दिन तो ठीक-ठाक कट गये किन्तु इसके बाद श्रीमाँ को तेज बुखार हो गया। पिता-पुत्री ने एक चट्टी में आश्रय लिया। रात को जब श्रीमाँ बुखार से एकदम बेहोश हो गयी, तो देखा उनके पास एक अनजान लड़की आकर बैठी है। लड़की की देह का रंग काला तो था परन्तु ऐसा सुन्दर रूप उन्होंने कभी देखा न था। वह लड़की बैठकर श्रीमाँ का सिर सहलाने लगी। वह हाथ इतना नरम व ठण्डा था कि शरीर का ताप तत्काल शान्त हो गया। श्रीमाँ ने पूछा, 'तुम कहाँ से आ रही हो?' लड़की ने उत्तर दिया, 'मैं दक्षिणेश्वर से आ रही हूँ।' यह सुनकर श्रीमाँ अवाक् हो गयी और बोलीं, 'दक्षिणेश्वर से? मैंने सोचा था कि दक्षिणेश्वर जाऊँगी, उनको (ठाकुर को) देखूँगी, यह मेरे भाग्य में नहीं।' वह लड़की बोली, 'ऐसा क्यों? तुम दक्षिणेश्वर जाओगी, ठीक होकर जाओगी, उन्हें देखोगी भी। तुम्हारे लिए ही तो उन्हें वहाँ रोक रखा है।' श्रीमाँ ने पूछा, 'तुम हमारी क्या लगती हो?' उस लड़की ने जवाव दिया, 'मैं तुम्हारी बहन हूँ।'श्रीमाँ ने कहा, 'अच्छा! इसीलिए तुम आयी हो?'—इस प्रकार के वार्तालाप के पश्चात् श्रीमाँ सो गयीं। अगले दिन सुबह देखा उनका बुखार ठीक हो गया था। फिर से उन्होंने

चलना शुरू किया। लम्बी यात्रा का अन्तिम हिस्सा उन्हें नाव से पार करना पड़ा। दक्षिणेश्वर मन्दिर के घाट पर जब नाव आकर लगी, उस समय रात के ९ बजे थे।

गंगा-घाट से ही श्रीमाँ को सुनाई दिया श्रीरामकृष्ण का व्यग्र स्वरकण्ठ, 'ओरे हृदे ! बारबेला (अशुभ समय) तो नहीं है, न? पहली बार आना हो रहा है।' उनकी बातों में प्रेम कुछ ऐसा उमड़ रहा था कि सारा संकोच भूलकर श्रीमाँ श्रीरामकृष्ण के कमरे में पहुँच गयी। श्रीमाँ को देखते ही वे बोले, 'तुम आ गयीं, अच्छा किया।' श्रीमाँ ने देखा कि लोग जिसे पागल कहते हैं वे तो पूर्ण रूप से स्वस्थ हैं। पत्नी को भूलना तो दूर, वे तो उसके प्रति और अधिक कृपापूर्ण हैं। श्रीमाँ को अस्वस्थ देख श्रीरामकृष्ण ने अविलम्ब उनकी चिकित्सा की व्यवस्था की। कुछ ही दिनों में श्रीमाँ पूर्णरूप से स्वस्थ हो गयीं।

दक्षिणेश्वर प्रवास के दौरान श्रीरामकृष्ण श्रीमाँ के घर के काम-काज, आत्मीय स्वजनों के प्रति व्यवहार की सांसारिक शिक्षा देने के साथ-साथ भजन, कीर्तन, ध्यान, समाधि व ब्रह्मज्ञान सम्बन्धी नाना उपदेश भी देते थे। श्रीमाँ को वे कहते, 'चन्दामामा जैसे सभी शिशुओं के मामा है, ठीक उसी प्रकार ईश्वर भी सबके अपने हैं; उन्हें पुकारने का अधिकार सबको है। जो भी उन्हें पुकारेगा, उसे दर्शन देकर वे कृतार्थ करेंगे। तुम पुकारोगी तो तुम्हें भी दर्शन मिलेगा।'

* * * *

एक दिन उन्हें जाँचने के लिए श्रीरामकृष्ण ने पूछा, 'तुम क्या मुझे सांसारिकता की राह पर खींच ले जाने के लिए आयी हो?' श्रीमाँ ने बिन्दुमात्र सोचे बिना ही उत्तर दिया, 'नहीं, मैं तुम्हें सांसारिकता की ओर क्यों खींचूँगी, भला? मैं तो तुम्हारे इष्टपथ पर तुम्हारी सहायता करने आयी हूँ।' श्रीमाँ ने भी एक दिन ठाकुर की चरण-सेवा करते-करते उनसे पूछा, 'मैं तुम्हें क्या लगती हूँ?' उत्तर में ठाकुर बोले, 'जो माँ

मन्दिर में हैं, उन्होंने इस शरीर को जन्म दिया है, अब नौबत में निवास कर रही हैं और वही अभी मेरी चरण-सेवा कर रही हैं। मुझमें तुममें सचमुच ही साक्षात् आनन्दमयी का स्वरूप दिखाई देता है।' यह उनके मुँह की बात नहीं, अन्तर की सत्यदृष्टि और अग्निपरीक्षा भी है जो श्रीरामकृष्ण एवं सारदादेवी जगत् को दे गये हैं। श्रीमाँ कई महीनों तक श्रीरामकृष्ण के कमरे में उन्हीं के पास रात को सो जातीं। देहबोधमुक्त भाव से श्रीरामकृष्ण की प्रायः सारी रात समाधि में कट जाती। ऐसे समय श्रीमाँ को पास में देखकर एक बार उन्होंने इस प्रकार स्वयं की परीक्षा ली, 'मन, इसी का नाम है नारी-देह। लोग इसे परम उपादेय भोग्यवस्तु मानते हैं और इसी को भोगने के लिए हर समय लालायित रहते हैं। किन्तु इसे ग्रहण करने में बस देह में ही आबद्ध रह जाना होता है, सच्चिदानन्द ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो पाती। प्रेम के घर में चोरी न करो; पेट में एक बात और मुँह में दूसरी बात न रखो। सच कहो, तुम इसे ग्रहण करना चाहते हो या ईश्वर को पाना चाहते हो? यदि इसे चाहो तो तुम्हारे सम्मुख ही है, ले लो।'—यह कहकर हाथ प्रसारित करते ही मन बाह्यभूमि त्यागकर समाधि में लीन हो गया। उस रात उनका मन साधारण भूमि पर नहीं उतरा।

ठाकुर के इस समय के दिव्यभाव के बारे में श्रीमाँ ने कहा है, 'वे कैसे अपूर्व दिव्यभाव में रहते, यह शब्दों में समझाया नहीं जा सकता। गहन भाव में कभी कितनी बातें, कभी हँसी तो कभी रोदन और कभी समाधि में बिल्कुल स्थिर हो जाना—ऐसे ही चलता सारी रात। भाव-समाधि की बात उस समय मैं बिल्कुल नहीं समझती थी।' बाद में श्रीरामकृष्ण ने ही श्रीमाँ को भिन्न-भिन्न भावों हेतु तदनुरूप भगवन्नाम कान में सुनाने के बारे में सिखला दिया था। बीजमन्त्र सुनाते ही श्रीरामकृष्ण को होश आ जाता। लगातार आठ महीने श्रीमाँ और श्रीरामकृष्ण एक ही बिस्तर पर सोते। बाद में जब श्रीरामकृष्ण को यह

समझ में आया कि कब उनकी भावसमाधि लग जाएगी इसी चिन्ता में श्रीमाँ सारी रात सो नहीं पातीं, तो उन्होंने उनके सोने के लिए (नौबत में) अलग कमरे की व्यवस्था कर दी।

केवल श्रीरामकृष्ण ही नहीं, पवित्रतास्वरूपा श्रीमाँ के अपूर्व चरित्र की महिमा भी हमें यहाँ स्मरण रखनी होगी। श्रीरामकृष्ण ने स्वयं ही कहा है, 'वो (श्रीमाँ) यदि इतनी अच्छी न होती ... तो संयम का बाँध तोड़कर (स्वयं उन्हें भी) देहबुद्धि आती या नहीं, कौन कह सकता है?'

* * * *

१२७९ (बंगाब्द) साल के जेठ माह की अमावस्या तिथि को फलहारिणी कालिका पूजा के दिन श्रीरामकृष्ण ने श्रीमाँ के षोडशीरूप की पूजा की। उनके सम्मुख पूजा के नैवद्य प्रदान कर उन्होंने प्रार्थनामन्त्र का उच्चारण किया : 'हे बाले, हे सर्वशक्तिधर अधीश्वरी माँ त्रिपुरासुन्दरी, सिद्धिद्वार उन्मुक्त कर दो और सभी का कल्याण करो।' पूजा के बीच में बाह्य-ज्ञान-शून्य होकर श्रीमाँ समाधिस्थ हो गयीं। अर्द्धबाह्यदशा में मन्त्रोच्चारण करते-करते श्रीरामकृष्ण भी समाधि-राज्य में चले गये। समाधिस्था देवी के सामने समाधिस्थ पूजक—इस अवस्था में काफी समय बीत गया। आधी रात के काफी बाद श्रीरामकृष्ण की समाधि टूटी। तब उन्होंने स्वयं को, अपनी साधना के फल, जप की माला इत्यादि सर्वस्व 'देवी' के चरणों में चिरकाल के लिए विसर्जित कर पूजा शेष की। धीरे-धीरे श्रीमाँ बाह्यभूमि पर लौट आईं। इस पूजा के फलस्वरूप श्रीमाँ श्रीरामकृष्ण की समस्त सिद्धियों की अधिकारिणी बनीं। जो देवी-शक्ति उनमें सुषुप्त अवस्था में थी, इस पूजा के द्वारा वह जाग्रत हुई तथा जिसकी सहायता से परवर्तीकाल में उन्होंने श्रीरामकृष्ण के असमाप्त लोक-कल्याण के व्रत को पूर्ण किया। षोडशी पूजा के समय श्रीमाँ ने उन्नीस वर्ष की आयु में पदार्पण किया। पत्नी को

जगज्जननी मानकर उसकी पूजा करना आध्यात्मिक इतिहास में सम्भवत: पहली बार ही हुआ था।

* * * *

कामारपुकुर या जयरामबाटी से श्रीमाँ पैदल ही दक्षिणेश्वर जातीं। एकबार किसी त्यौहार के उपलक्ष्य में श्रीमाँ कामारपुकुर से दक्षिणेश्वर जा रही थीं। शारीरिक अक्षमता के कारण बार-बार संगी-साथियों से पिछड़ जातीं। कामारपुकुर से आरामबाग चार कोस का रास्ता था और आरामबाग से पाँच कोस व्यापी तेलोभेलो का मैदान था जो उस वक्त डकैतों के लिए कुख्यात था। श्रीमाँ के साथी, डकैतों के भय से, मैदान तेज़ी से पार कर लेना चाहते थे। किन्तु श्रीमाँ को बार-बार पिछड़ते देख वे उन्हें पीछे ही छोड़ आगे बढ़ गये। धीरे-धीरे शाम का अँधेरा हो गया। एकाकी श्रीमाँ घबराहट में राह चल रही थीं। अचानक उनके सामने अँधेरा चीरकर गहरे काले वर्ण की एक विशाल पुरुषमूर्ति रास्ता रोककर खड़ी हो गयी। हाथ में चाँदी का वलय, घनी और कुँचित केशराशि, कँधे पर दीर्घ लाठी। श्रीमाँ ने उसे डकैत समझा। श्रीमाँ को डराने के लिए उसने रूखे स्वर में कहा, 'कौन हो तुम जो इस समय यहाँ खड़ी हो? कहाँ जाना है?' श्रीमाँ ने कहा, 'पूरब को।' डकैत और भी रूखे स्वर में बोला, 'उसके लिए इस रास्ते से नहीं, उस रास्ते से जाना होगा।' इस दरम्यान डकैत श्रीमाँ के बिल्कुल करीब आ गया था। श्रीमाँ के चेहरे पर नज़र पड़ते ही अचानक उसका मन बदल गया। नरम स्वर में उसने श्रीमाँ से कहा, 'डर की कोई बात नहीं, मेरे साथ स्त्रियाँ हैं, जो पिछड़ गयी हैं।' श्रीमाँ ने देखा, सचमुच थोड़ी दूर पर एक स्त्री नज़र आ रही थी जो इसी तरफ आ रही थी। श्रीमाँ को कुछ भरोसा हुआ, उन्होंने उस पुरुष से कहा, 'पिताजी, मेरे साथी मुझे छोड़ गये हैं और लगता है, मैं रास्ता भूल गयी हूँ, तुम मुझे उनके पास पहुँचा दो। तुम्हारे जमाई दक्षिणेश्वर में रानी रासमणि की फुलवाड़ी में रहते हैं, मैं उनके पास जा

रही हूँ। तुम यदि मुझे वहाँ तक ले चलोगे वे तुम्हारी खूब खातिर करेंगे।' श्रीमाँ की बात खत्म होने तक वह स्त्री पास आ गयी थी। सरल विश्वास में श्रीमाँ ने उनका हाथ पकड़कर कहा, 'माँ, मैं तुम्हारी बेटी हूँ, सारदा, साथियों से छूट जाने के कारण बड़ी विपत्ति में पड़ गयी थी। तक़दीर से बाबा और तुम आ गईं वरना पता नहीं क्या करती !' श्रीमाँ के सरल व्यवहार से डकैत दम्पति का हृदय पिघल गया। सचमुच बेटी की ही तरह उन्हें साथ लेकर वे तारकेश्वर की राह पर चले पड़े। श्रीमाँ थक गयीं तो उस स्त्री ने अपने कपड़े बिछाकर उनके लिए बिस्तर बना दिया। श्रीमाँ का 'डकैत पिता' उनके लिए मुरमुरे और मीठी लाही खरीद लाया और 'बेटी' सो गयी तो सारी रात लाठी हाथ में लिये पहरा देता रहा।

अगले दिन दोपहर तारकेश्वर पहुँचने पर डकैत स्त्री ने डकैत से कहा, 'मेरी बेटी ने कल कुछ भी नहीं खाया। तारकेश्वर बाबा की पूजा करके बाजार से मछली और तरकारी ले आओ, आज उसे ठीक से खिलाना होगा।' वह जब चला गया तो श्रीमाँ के साथी उन्हें खोजते-खोजते वहाँ पहुँचे। श्रीमाँ ने डकैत दम्पति से मुलाक़ात की बात सभी को बतायी और कहा, 'ये लोग आकर यदि कल मेरी रक्षा न करते तो मैं क्या करती, कुछ कह नहीं सकती।' श्रीमाँ के डकैत माँ-पिता एवं साथियों ने एक साथ दोपहर का भोजन किया और फिर राह चलना शुरू किया।

एक रात में ही श्रीमाँ और उनके डकैत माँ-पिता में परस्पर इतना अपनत्व हो गया था कि राह में जब विदाई लेने का समय आया तो तीनों रोने लगे। श्रीमाँ की साड़ी के आँचल में खेत के हरे मटर बाँधकर डकैत की पत्नी बोली, 'बेटी सारदा, रात को जब मुरमुरे खाओगी, तो इसके साथ खाना।' श्रीमाँ ने भी उनसे बार-बार अनुरोध किया कि बीच-बीच में दक्षिणेश्वर आकर वे उनसे मिल जाएँ। सचमुच में ये

डकैत-दम्पति नाना उपहार लेकर श्रीमाँ से दक्षिणेश्वर में मिलने एकाधिक बार आये थे। श्रीमाँ के मुख से सारी बातें सुनकर श्रीरामकृष्ण ने भी उनके साथ दामाद-सदृश व्यवहार किया और उनका यथोचित आदर-सत्कार भी किया।

एकबार इस दस्यु-दम्पति से श्रीमाँ ने प्रश्न किया था, 'तुम लोग मुझे इतना स्नेह क्यों करते हो?' उन्होंने उत्तर दिया था, 'तुम कोई साधारण मनुष्य नहीं हो, हमने तुम्हें काली के रूप में देखा है।' एक भक्त ने यह सुनकर पूछा था, 'तो आपने (श्रीमाँ ने) क्या उन्हें कालीरूप में दर्शन दिया था? माँ छिपाइयेगा नहीं, बताइये।' श्रीमाँ टाल गयीं और बोलीं, 'मैं क्यों दूँगी? उसीने कहा कि उसने देखा था।' भक्त ने कहा, 'इसका मतलब ही यह हुआ—आपने दर्शन दिया था।' श्रीमाँ ने हंसकर कहा, 'तुम जो चाहो कहो।'

* * * *

दक्षिणेश्वर मन्दिर के नौवतखाने के निचले कमरे में श्रीमाँ रहतीं और ऊपर सास चन्द्रमणिदेवी। इस नौबतखाने का जीवन कैसा था? परवर्तीकाल में भक्तों से श्रीमाँ ने कहा था, 'ठाकुर (श्रीरामकृष्ण) की सेवा में जब नौबतखाने में थी तो कितने कष्ट में उस छोटे-से कमरे में रहना पड़ता। उसी में कितना सामान-असबाब था। कभी-कभी अकेली भी रही। ... शुरू-शुरू में तो नौबतखाने के कमरे में घुसते ही सिर टकरा जाता। एक दिन तो कट भी गया। बाद में आदत पड़ गयी। दरवाजे के सामने आते ही स्वतः सिर झुक जाता। कोलकाता से मोटी-सोटी औरतें देखने आतीं और दरवाजे के दोनों तरफ हाथ रखकर खड़ी हो जातीं और कहतीं, "आहा रे, हमारी सती-लक्ष्मी कैसे घर में रहती हैं, मानो वनवास हो।" भोर चार बजे नहाती। दिन में शाम को जब सीढ़ी पर थोड़ी-सी धूप पड़ती तो उसी में अपने केश सुखाती। उस समय सिर पर काफी बाल थे। (नौबत में) नीचे का कमरा थोड़ा-सा

खाली रहता पर उसमें माल-असबाब भरा रहता। ऊपर छींके झूला करते। रात को लेटती तो सिर के ऊपर मछली की हाँडी कलकल किया करती—उसमें ठाकुर के लिए सिंगी मछली का रसा जो होता। शौच और स्नान में ही जो कष्ट होता सो होता। वेग को रोक-रोककर ही पेट के रोग ने जकड़ लिया था। ज़रूरत दिन में होती और जो रात में पाती—तो गंगा किनारे अँधेरे में चली जाती। केवल बोलती, "हरि, हरि, और एकबार शौच जा पाती।" और वे मछआरिनें मेरी साथी थीं। वे गंगा नहाने आतीं तो बरामदे में अपनी डलिया रखकर सब नहाने उतरतीं, मेरे साथ कितनी बातें करतीं। फिर जाते समय अपनी-अपनी डलिया ले जातीं। रात में मछुआरे मछली पकड़ते और गाते, मैं सुनती। ... फिर भी और किसी कष्ट का अहसास नहीं हुआ। ... उनकी सेवा में कोई कष्ट महसूस ही नहीं होता था। आनन्द में दिन कैसे कट जाते पता ही न चलता। ... कभी-कभी दो-दो महीने में एक दिन भी ठाकुर का दर्शन न मिलता तो मन को समझाती, "रे मन, तेरे ऐसे भाग्य कहाँ कि रोज-रोज उनके दर्शन मिलें।"

(बाँस के टट्टर की फाँक से) खड़े-खड़े कीर्तन सुनती रहती—पैरों में वायु-रोग लग गया। ... कितने आनन्द में थी मैं ! कितने प्रकार के लोग उनके पास आते ! दक्षिणेश्वर में मानो आनन्द का हाट लग जाता।' देर रात को अँधकार में गंगा-स्नान करने जाती श्रीमाँ ने सीढ़ियों पर सोये एक मगरमच्छ पर प्राय: पैर रख ही दिया था। इसके बाद श्रीमाँ बिना रोशनी लिये गंगा-स्नान को नहीं जातीं।

* * * *

चारों ओर बाँस की चटाई से घिरे नौबत के छोटे-से कमरे को श्रीरामकृष्ण ने 'पिंजरा' नाम दिया था। पिंजरे में रहती थीं श्रीमाँ और ठाकुर की भतीजी लक्ष्मीदीदी। कभी-कभी श्रीरामकृष्ण मज़ाक में कहते, 'अरे, पिंजरे में तोता-मैना है, फलमूल, [illegible] कुछ दे आ।'

श्रीरामकृष्ण की यह बातें सुन अपरिचित लोगों, यहाँ तक कि मास्टर महाशय महेन्द्रनाथ गुप्त ने भी सोचा कि पिंजरे में सचमुच पंछी पाले हुए हैं। इसी दरम्यान श्रीरामकृष्ण श्रीमां को नाना व्यावहारिक उपदेश भी देते, 'मुहल्ले के लोगों से प्रेम व्यवहार रखना, अस्वस्थ होने पर किसी से खोज-खबर लेना। ... काम करना होता है। स्त्रियों को बैठे नहीं रहना चाहिए; बैठे रहने से नाना चिन्ताएँ-कुचिन्ताएँ आती हैं।' एक दिन श्रीमाँ को पाट लाकर दिया और बोले, 'इससे मेरे लिए एक छींका बना दो, मैं उसमें सन्देश रखूँगा, बच्चों के लिए पूरियाँ रखूँगा।' श्रीमाँ ने छींका बना दिया और जो रेशा बचा उसे कपड़े में लपेटकर तकिया बना लिया। बाद में श्रीमाँ ने कहा, 'चट के ऊपर बिछा लेती और वह रेशे का तकिया सिर के नीचे ले लेती। उस वक्त उस पर लेटकर जैसी नींद आती, आज इन सब (खाट-बिछौने पर लेटकर भी वैसी नींद नहीं आती है—कोई फर्क ही महसूस नहीं होता।'

* * * *

श्रीमाँ और लक्ष्मीदी ने उत्तर-पश्चिमाँचल के स्वामी पूर्णानन्द नाम के एक वृद्ध संन्यासी से शक्तिमन्त्र की दीक्षा ग्रहण की। बाद में श्रीरामकृष्ण ने श्रीमाँ की जीभ पर बीजमन्त्र लिखकर दीक्षादान दिया। दिन भर के सारे काम त्रुटिहीन रूप से खत्म करने के बाद भी घनी रात और भोर में वे ध्यान-जप में डूब जातीं। उनकी इस नीरव साधना की बाहर किसी को खबर तक नहीं होती। एक चाँदनी रात को केवल स्वामी योगानन्द (श्रीरामकृष्ण के संन्यासी शिष्य) ने नौबत के दरवाजे के सामने श्रीमाँ को समाधिस्थ अवस्था में देख लिया था।

बाद में एक दिन की बात में अपनी रिश्तेदार नलिनी दीदी को उन्होंने कहा था, 'तुम्हारी उम्र में मैंने कितना (काम) किया है। और यह सब करके भी रोज एक लाख जप करती। ... खटना पड़ता है, बिना परिश्रम किये क्या कुछ होता है, सांसारिक कामों के दरम्यान भी समय

निकालना पड़ता है। अपनी बात क्या कहूँ, मैं तब दक्षिणेश्वर में रात के तीन बजे उठकर जप करने बैठ जाती—कोई होश ही नहीं रहता। एक दिन चाँदनी रात में नौबत की सीढ़ी के पास बैठी जप कर रही थी, चारों ओर नि:स्तब्धता थी। ठाकुर उस दिन कब झाऊ के नीचे शौच को गये, कुछ पता ही न चला, अन्य दिन जूतों की आवाज़ से पता चल जाता। ध्यान खूब जम गया था। उस वक्त मेरी शक्ल-सूरत कुछ और ही थी—गहने पहने हुए, लाल किनारे की साड़ी। शरीर से आँचल उतरकर हवा में उड़ रहा था, कोई होश नहीं। पुत्र योगेन (योगानन्द) ने ठाकुर को लोटा देने जाते समय मुझे उस अवस्था में देख लिया था। वे भी क्या दिन थे, चाँदनी रात को चाँद की ओर देखते हुए हाथ जोड़कर मैंने कहा था—'अपनी इस ज्योत्स्ना के समान मेरा अन्तर निर्मल कर दो। ... आहा उस समय क्या मन था मेरा ! एक दिन वृन्दे (कन्या) ने मुझे कोंचा मारा; मेरे सीने में जैसे आकर लगा।' श्रीमाँ उस वक्त गहरे ध्यान में थीं इसीलिए बाहरी शब्द उनके प्राणों में वज्र के समान बज उठा था—वे रो पड़ी थीं।

* * * *

दक्षिणेश्वर में एक दिन संध्या के बाद श्रीमाँ श्रीरामकृष्ण का भोजन रखने गयीं। श्रीरामकृष्ण तब आँखें बन्द किये खाट पर लेटे थे। लक्ष्मीदी खाना रखने आई हैं सोचकर वे बोले, 'दरवाजा बन्द करती जा।' श्रीमाँ ने कहा, 'हाँ, बन्द किया है।' श्रीमाँ का कण्ठस्वर पहचानकर श्रीरामकृष्ण संकुचित हो उठे, 'ओह, तुम? मैं समझा था लक्ष्मी है, बुरा तो नहीं माना।' 'करती जाना' न कहकर 'करती जा' कहकर जैसे उन्होंने कितना अपराध कर दिया हो। इतना ही नहीं, वे सारी रात सो नहीं पाए। सुबह नौबत में श्रीमाँ के पास उपस्थित होकर बोले, 'देखो, सारी रात मैं सो नहीं पाया—सोचता रहा क्यों मैंने ऐसी कठोर बात कही।'

श्रीमाँ की सदैव ऐसी इज़्ज़त करते थे श्रीरामकृष्ण। इसीलिए बाद में श्रीमाँ कहतीं, 'मैं ऐसे पति के पल्ले पड़ी थी जिन्होंने कभी मुझे 'तू' तक नहीं कहा।' 'ठाकुर ने मुझे कभी फूल से भी नहीं मारा।'

* * * *

श्रीरामकृष्ण को भक्त लोग जो भी फलमूल देते, वह सब वे नौबत में श्रीमाँ के पास भिजवा देते। श्रीमाँ खुशी-खुशी वह सब सभी को खिला देतीं। इस मामले में हमेशा मुक्तहस्त थीं। एक दिन स्वयं श्रीरामकृष्ण ने उनसे शिकायत की, 'इतना खर्च करने से कैसे चलेगा?' श्रीमाँ ने कोई प्रतिवाद नहीं किया, चुपचाप चली आईं। किन्तु श्रीरामकृष्ण समझ गये कि श्रीमाँ को दुःख पहुँचा है। फौरन भतीजे रामलाल से कहा, 'अरे रामलाल, जा अपनी चाची को जाकर शान्त कर। वह गुस्सा करेगी तो (स्वयं को इंगित कर) इसका सबकुछ नष्ट हो जाएगा।' इस घटना का उल्लेख करते हुए भगिनी निवेदिता ने टिप्पणी की थी—'इतनी प्रिय थीं श्रीमाँ श्रीरामकृष्ण के लिए।' प्रिय एवं सम्मानित।

* * * *

ठाकुर श्रीमाँ की बुद्धिमत्ता की प्रशंसा करते। गंगा-किनारे पानिहाटी में हर ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी को 'चिउड़ा-महोत्सव' होता। उस दिन वहाँ सारे दिन आनन्दोत्सव—हरि-संकीर्तन लगा ही रहता। उस दिन वहाँ सारे दिन अच्छा लगता, एकाधिक बार वहाँ गये थे। एकबार इस उत्सव के दिन सुबह ठाकुर पानिहाटी जाने के लिए प्रस्तुत हो रहे थे; कुछ महिला भक्तों ने भी उनके साथ जाने का तय किया। वे जा रही हैं यह जानकर उनमें से एक महिला भक्त को भेजकर श्रीमाँ ने ठाकुर से पुछवाया कि क्या वे भी जा सकती हैं । ठाकुर ने कहा, 'तुम लोग जा ही रही हो; यदि उसकी इच्छा हो तो वह भी चले।'

श्रीमाँ समझ गयीं कि ठाकुर ने खुले मन से अनुमति नहीं दी है।

यदि सचमुच उनकी इच्छा होती तो वे कहते, 'हाँ, हाँ, ज़रूर जा सकती है।' अतः जाने का संकल्प त्यागकर वे बोलीं, 'इतनी भीड़ में असुविधा होगी। रात को उत्सव-क्षेत्र से लौटकर ठाकुर ने कहा था, 'इतनी भीड़ और ऊपर से भाव-समाधि के लिए सभी की नज़र मुझपर थी—साथ में न जाकर उसने (श्रीमाँ ने) अच्छा ही किया। उसको साथ देखकर लोग कहते "हँस-हँसी आये हैं!" वह खूब बुद्धिमती है।'

उसी दिन माँ की बुद्धिमत्ता की प्रशंसा करते हुए उन्होंने और एक घटना का उल्लेख किया था। एकबार मारवाड़ी भक्त लक्ष्मीनारायण श्रीरामकृष्ण की सेवा में दस हजार रुपये देना चाह रहे थे। संन्यासी होने के कारण यह प्रस्ताव उन्होंने फौरन ठुकरा दिया किन्तु उनकी इच्छा श्रीमाँ की परीक्षा लेने की हुई। श्रीमाँ से उन्होंने कहा, 'एजी, ये रुपया देना चाहता है। मैं नहीं ले सकूँगा कहने पर तुम्हारे नाम पर देना चाहता है। यह तुम ले क्यों नहीं लेतीं?' श्रीमाँ ने तत्काल उत्तर दिया, 'ऐसा कैसे हो सकता है? रुपया नहीं लिया जा सकता। मैं लूँगी तो भी रुपया तुम्हारा ही लेना होगा; क्योंकि मैं रखूँगी तो भी तुम्हारी सेवा या अन्य ज़रूरतों पर खर्च किये बिना नहीं रह पाऊँगी; अतः तुम्हारा ही लेना हुआ। लोग तुम्हारी श्रद्धा-भक्ति तुम्हारे त्याग के लिए करते हैं। अतः कभी भी हो रुपया नहीं लिया जाएगा।' श्रीरामकृष्ण अत्यन्त प्रसन्न हुए।

* * * *

इसके बहुत दिनों बाद की बात है। श्रीरामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द के भी देहत्याग के बाद की घटना है। दक्षिण भारत में घूमते-घूमते श्रीमाँ अपनी भतीजी राधू तथा अन्यान्य लोगों के साथ पाम्बन द्वीप पर रामेश्वर मन्दिर देखने पहुँचीं। उक्त द्वीप और मन्दिर उन दिनों रामनाद राजा के अधीन था जो कि स्वामीजी के शिष्य थे। उन्होंने मन्दिर के कर्मचारियों को कहला भेजा—'मेरे गुरु की गुरु परम गुरु जा रही हैं, सारी व्यवस्था करना।' उनकी विशेष व्यवस्था के अनुरूप

मन्दिर के गर्भगृह में जाकर श्रीमाँ ने मन भरकर रामेश्वर के शिवलिंग की पूजा की। इसके पश्चात् राजा की इच्छा के अनुरूप एक दिन उन्होंने श्रीमाँ को मन्दिर से लगे हुए कोषागार का परिदर्शन कराया। राजा का निर्देश था : श्रीमाँ या उनके साथी यदि कोषागार से कुछ लेना चाहें तो उन्हें तत्काल प्रदान किया जाए । श्रीमाँ को जब उन्होंने यह बात बताई तो श्रीमाँ ने कहा, 'मुझे भला क्या चाहिए?' बाद में कहीं वे हतोत्साहित न हों यह सोचकर बोलीं, 'अच्छा, राधू को यदि कुछ दरकार होगी तो ले लूँगी।' फिर राधू से कहा, 'देख, तुझे यदि कुछ दरकार हो, तो ले सकती है।' किन्तु कोषागार खोलते ही जब हीरे-जवाहरात की वस्तुएँ जगमगाने लगीं, तो श्रीमाँ की छाती धड़कने लगी। व्याकुल मन से वे श्रीरामकृष्ण की प्रार्थना करने लगीं—'हे ठाकुर! राधू की कहीं कोई इच्छा न जाग्रत हो।' निश्चय ही ठाकुर ने उनकी प्रार्थना सुन ली क्योंकि बालिका राधू ने सब देख-सुनकर कहा, 'यह सब मैं क्या लूँ? मुझे नहीं चाहिए। लिखने की मेरी पेंसिल खो गयी है, एक पेंसिल खरीद दो।' श्रीमाँ की चिन्ता दूर हुई और रास्ते की एक दूकान से उन्होंने राधू को दो पैसे की एक पेंसिल खरीद दी।

श्रीरामकृष्ण को स्वामी विवेकानन्द ने त्याग-सम्राट् कहा है। श्रीमाँ भी हर क्षेत्र में, त्याग के क्षेत्र में भी, उनकी उपयुक्त सहधर्मिणी थीं—त्यागसाम्राज्ञी।

* * * *

अन्य सभी विषयों में श्रीरामकृष्ण की आज्ञानुरूप चलने के बावज़ूद मातृत्व के क्षेत्र में श्रीमाँ अपनी स्वतन्त्र सत्ता बनाए रखतीं। यह मानो उनका अपना विचरण क्षेत्र हो। जहाँ श्रीरामकृष्ण की इच्छा भी तुच्छ हो जाती।

श्रीरामकृष्ण के भोजन का समय होते ही श्रीमाँ स्वयं ठाकुर को खिला आतीं। ठाकुर का ऊर्ध्वमुखी मन कहीं भोजन करते-करते ही

भावसमाधि में लीन न हो जाए, यह ख्याल एकमात्र श्रीमाँ ही रख सकती थीं और तदनुकूल व्यवस्था कर पाती थीं। एक दिन यथासमय श्रीमाँ भोजन की थाली लेकर ठाकुर के कमरे की सीढ़ी पारकर बरामदे में आई ही थीं कि अचानक एक महिला-भक्त आई और 'दीजिए माँ, मुझे दीजिए' कहकर थाली माँ के हाथ से लेकर ठाकुर के सामने रखकर चली आई। महिला के पीछे-पीछे ठाकुर के कमरे में जाकर श्रीमाँ ने देखा कि ठाकुर बैठे हैं किन्तु अन्न-स्पर्श नहीं कर पा रहे हैं। श्रीमाँ की ओर देखकर वे बोले, 'यह तुमने क्या किया? (भोजन) उसके हाथों में क्यों दिया? जानती नहीं, वह कौन है? अब उसका छुआ मैं कैसे खाऊँ?' उक्त महिला शुद्धचरित्र नहीं थी। शुद्धचरित्र न होने के कारण उसका छुआ भोजन नहीं खा पाते। ठाकुर को तसल्ली देते हुए श्रीमाँ ने कहा, 'हाँ जानती हूँ, पर आज खा लो।' उत्तर में श्रीरामकृष्ण बोले, 'और किसी दिन किसी दूसरे के हाथ भोजन नहीं दोगी, बोलो?' किन्तु श्रीमाँ वचन नहीं दे पायीं। हाथ जोड़कर उत्तर दिया, 'ऐसा मैं नहीं कर पाऊँगी, ठाकुर! तुम्हारा भोजन मैं स्वयं ही ले आऊँगी, किन्तु कोई मुझे "माँ" कहकर यदि माँगेगा तो मैं नहीं रह पाऊँगी। और तुम केवल मेरे ठाकुर तो हो नहीं—सबके हो।' तब श्रीरामकृष्ण खुश हो, भोजन करने बैठे। खुश शायद इस कारण से हुए कि श्रीमाँ का मातृत्व जागृत हो स्वमहिमा में अभिव्यक्त होने जा रहा है, और जिस मातृत्व की सहायता से वे श्रीरामकृष्ण के जीवनव्रत को परिपुष्ट करेंगी।

* * * *

अपनी साधना के आखिर में श्रीरामकृष्ण को यह भान हुआ था कि सर्वत्यागी युवकों का एक दल उनके पास आएगा, जिन्हें स्तम्भ बनाकर उदार रूप से वे एक नवीन संन्यासी-संघ का गठन कर जाएँगे एवं वह संन्यासी दल लम्बे समय तक उनके विचारों को जगत् में जीवित रखेगा। नरेन्द्र (स्वामी विवेकानन्द), राखाल (स्वामी ब्रह्मानन्द), शरत्

(स्वामी सारदानन्द) ने जब उनके पास आना शुरू किया तो श्रीरामकृष्ण तत्काल पहचान गये कि जगज्जननी के चिह्नित युवक यही हैं। उनके साथ ही साथ गृहस्थ भक्तों ने भी आना शुरू किया—जो विभिन्न उपायों से उस संन्यासी-संघ की सहायता करेंगे। आईं महिला भक्त भी—क्योंकि श्रीरामकृष्ण गृहस्थ-संन्यासी, पुरुष-नारी के भेदरहित सबके थे। सबको लेकर दक्षिणेश्वर के मन्दिर में जम उठी भक्तों की मजलिस। श्रीरामकृष्ण को केन्द्र में रखकर बह चला आनन्द का प्रवाह।

श्रीरामकृष्ण के कमरे से कुछ दूर नौबत में थीं श्रीमाँ, सभी के अगोचर, पर्दे की ओट में। इतने गोपन में कि दक्षिणेश्वर मन्दिर के पुराने खजांची ने भी एक दिन कहा था : परमहंसदेव की पत्नी इसी मन्दिर में कहीं हैं, सुना है पर कभी देखा नहीं। परन्तु स्वयं को ओट में रखकर ही वे श्रीरामकृष्ण की परिचर्या में त्रुटिहीन रूप से जुटी रहीं। भक्तों को लेकर श्रीरामकृष्ण का जो 'परिवार' गठित हुआ, वही उनका भी परिवार था। श्रीरामकृष्ण और उनके भक्तों की सेवा ही उनका जीवन था। शायद नरेन्द्र आये हैं, श्रीरामकृष्ण ने उन्हें दक्षिणेश्वर में रह जाने को कहा है। सारे काम-काज के दौरान भी श्रीमाँ का मन श्रीरामकृष्ण के कमरे में ही पड़ा रहता, इसीलिए ठाकुर अपने कमरे में बैठकर जो भी बोलते, अधिकांश समय श्रीमाँ वह सुन पातीं। नरेन रहेंगे, सुनते ही रोटी और चने की दाल पकाने लगतीं—क्योंकि नरेन को रोटी और चने की गाढ़ी दाल अच्छी लगती। बालक शारदा (स्वामी त्रिगुणातीतानन्द) अभिभावक की इच्छा के विरुद्ध दक्षिणेश्वर आते। बहुत बार उनके पास लौटने के पैसे नहीं होते। घर लौटने से पूर्व ठाकुर उसे नौबत के पास जाने को कहते। नौबत के द्वार पर जाकर शारदा देखते कि चार पैसे रखे हैं—ठाकुर के कुछ कहने के पहले ही श्रीमाँ वे चार पैसे वहाँ रखकर ओट में सरक जातीं। यों तो सभी श्रीरामकृष्ण के पुत्र थे किन्तु स्वामी ब्रह्मानन्द उनके 'मानसपुत्र' थे। इसीलिए श्रीमाँ की नज़रों में भी

'राखाल' का विशेष स्थान था। राखाल को ठाकुर स्वयं श्रीमाँ के सामने लेकर आये थे। राखाल की पत्नी विश्वेश्वरी को भी ठाकुर ने ही नौबत में भेज दिया था और श्रीमाँ से 'पुत्रवधू' को मुँह-दिखाई में रुपये देने को कहा था। लाटू महाराज (स्वामी अद्भुतानन्द) को भी ठाकुर खुद श्रीमाँ के पास लेकर गये थे। एक दिन ठाकुर ने देखा कि श्रीमाँ नौबत में मैदा सान रही हैं और थोड़ी दूर पर लाटू गंगा-किनारे ध्यानस्थ बैठे हैं। ठाकुर ने जाकर उनसे कहा, 'ओरे लेटो! तू यहाँ बैठा है और उधर उन्हें नौबत में रोटी बेलनेवाला नहीं मिल रहा।' इसके पश्चात् लाटू को श्रीमाँ के पास ले जाकर बोले, 'यह लड़का बड़ा शुद्ध प्रवृत्ति का है, तुम्हें जब जो दरकार हो, इससे कहना, यह कर दिया करेगा।' सरल लाटू ने इसके बाद से श्रीमाँ की सेवा कर अपना जीवन धन्य किया। अन्तिम दिनों में भी लाटू महाराज श्रीमाँ के बारे में बोलते हुए भावविह्वल होकर कहते, 'मेरी वो दक्षिणेश्वर की माँ।' स्वामीजी ने जिन्हें श्रीरामकृष्ण का 'मिरेकल' बताकर स्वामी अद्भुतानन्द नाम दिया, उन महान् तपस्वी लाटू महाराज का अद्भुत बालकोचित हाव-भाव श्रीमाँ के अलावा कोई समझ न पाता था। इस प्रकार देखा जा सकता है कि दक्षिणेश्वर में रहने के दौरान सभी के अनजाने में श्रीमाँ ने धीरे-धीरे श्रीरामकृष्ण के कार्यक्षेत्र में प्रवेश किया, अवतार के लोककल्याणव्रत में उनके लिए जो दायित्व निर्दिष्ट था उसे यथायोग्यरूप से उन्होंने अपने कँधे पर उठा लिया।

* * * *

श्रीरामकृष्ण मनुष्यदेह में भगवान् और श्रीमाँ भी मानवीय रूप में साक्षात् भगवती थीं। षोडशी पूजा के माध्यम से श्रीरामकृष्ण ने श्रीमाँ के सुषुप्त देवीत्व को जाग्रत किया था। देहधारिणी आद्याशक्ति को जैसे उन्होंने उनके स्वरूप के विषय में सचेतन कर दिया ताकि निकट भविष्य में वे विश्वजननी होकर उनके लोककल्याणव्रत को पूर्ण कर सकें।

* * * *

देहत्याग से पूर्व ठाकुर स्पष्टरूप से श्रीमाँ को वह दायित्व सौंप गये। काशीपुर में ठाकुर जब कैंसर रोग से अस्वस्थ थे तो एक दिन अभियोग के सुर में उन्होंने श्रीमाँ से कहा, 'तुम क्या कुछ नहीं करोगी? सबकुछ यही (स्वयं को दिखाकर) करेगा?' श्रीमाँ ने कहा, 'मैं एक स्त्री, भला क्या कर सकती हूँ?' ठाकुर ने उसी समय उत्तर दिया, 'नहीं, नहीं, तुम्हें बहुत कुछ करना होगा।' काशीपुर में ही और एक दिन ठाकुर ने श्रीमाँ से कहा था, 'देखो, कोलकाता के लोग अँधेरे में कीड़े के समान किलबिला रहे हैं, तुम्हें उन्हें देखना होगा।' श्रीमाँ ने फिर कहा, 'मैं एक स्त्री! ऐसा कैसे कर पाऊँगी?' ठाकुर ने अनसुना होकर कहा, 'इसने (अर्थात् स्वयं ने) क्या किया है? तुमको इससे बहुत अधिक करना होगा।' इससे पहले भी ठाकुर ने एकाधिक बार श्रीमाँ से कहा था, 'दायित्व क्या सिर्फ मेरा है? तुम्हारा भी दायित्व है।'

* * * *

क्रमश: श्रीरामकृष्ण के गले का कैंसर तीव्र हो उठा। शरीर एकदम जीर्ण-शीर्ण हो गया। डॉक्टर-कविराजों की चेष्टा को सफल न होते देख श्रीमाँ ने तारकेश्वर में धरना दिया। दो दिन निर्जला उपवास में पड़ी रहीं। विधि के विधान से तीसरे दिन रात को श्रीमाँ के हृदय में परम वैराग्य जागृत हुआ। उनको लगा, 'इस जगत् में कौन किसका पति है? इस संसार में कौन है किसी का?' व्रत तोड़कर वे लौट आईं। मज़ाक करते हुए श्रीरामकृष्ण ने पूछा, 'क्यों क्या हुआ?—कुछ भी नहीं।'

अन्तत: ३१ श्रावण (१६ अगस्त १८८६) को रात एक बजकर दो मिनट पर श्रीरामकृष्ण ने देहत्याग किया। अगले दिन शाम को श्रीमाँ सारे आभूषण खोल देने के पश्चात् जब सोने के कंगनों का जोड़ा खोलने जा रही थीं, तब सम्पूर्ण स्वस्थ मूर्ति में आविर्भूत होकर ठाकुर ने उनका

हाथ पकड़कर कहा, 'मैं क्या मर गया हूँ जो तुम सधवा स्त्री की वस्तु हाथ से खोल रही हो?' श्रीमाँ ने फिर कंगन नहीं उतारे। और विधवा का वेश धारण नहीं किया। पतले लाल किनार की साड़ी पहनतीं और हाथों में दो कंगन होते।

* * * *

ठाकुर का विरह भूलने के लिए श्रीमाँ एक वर्ष तीर्थों का भ्रमण करती रहीं। साथ में थीं गोलाप-माँ, लक्ष्मीदीदी, मास्टर महाशय की पत्नी एवं स्वामी योगानन्दजी, अभेदानन्दजी तथा अद्भुतानन्दजी। विभिन्न तीर्थों में भ्रमण के दौरान बार-बार ठाकुर का दर्शन पाकर श्रीमाँ का मन कुछ शान्त हुआ। इसके बाद वापस लौटकर कामारपुकुर में भी श्रीमाँ को ठाकुर का दर्शन हुआ। एक दिन देखा सामने के रास्ते से ठाकुर आ रहे हैं और उनके पीछे-पीछे चल रहे हैं नरेन्द्र, बाबूराम, राखाल आदि। श्रीमाँ ने देखा ठाकुर के पादपद्म से जलधारा निकल रही है। श्रीमाँ समझ गयीं—'यही तो सब हैं, इनके पादपद्म से ही तो गंगा बहती है।' मुट्ठी-मुट्ठी जवाफूल तोड़कर श्रीमाँ उस गंगा में पुष्पांजलि देने लगीं। अन्त में ठाकुर नरेन्द्र की देह में विलीन हो गये। उस दिन भी ठाकुर ने श्रीमाँ से कहा था, 'तुम अपने हाथों से कंगन मत उतारना। वैष्णवतन्त्र जानती हो?' वैष्णवतन्त्र के अनुसार श्रीमाँ के 'चिन्मय पति' हैं। अतः श्रीमाँ का वैधव्य असम्भव था।

फिर भी श्रीमाँ को ऐसा लगता मानो वे निःसंग हैं। वैसा स्वर्ण-पुरुष ही जब चला गया तो इस देह को रखकर भी क्या होगा? इस समय की बात बाद में श्रीमाँ ने स्वयं कही, 'ठाकुर जब चल गये तो मेरी भी इच्छा हुआ कि मैं भी चली जाऊँ। उन्होंने दर्शन देकर कहा, "नहीं, तुम रहो। बहुत काम बाकी हैं।" बाद में उन्होंने देखा, सचमुच बहुत-से काम बाकी हैं।'

इस दौरान श्रीमाँ ने एक दिन देखा, लाल साड़ी पहने दस-बारह

वर्ष की एक लड़की सामने घूम-फिर रही है। उसे दिखलाकर ठाकुर ने कहा, 'इसी का आसरा रखो। तुम्हारे पास कितने ही लड़के अब आयेंगे।' अगले ही क्षण वह लड़की और ठाकुर अन्तरध्यान हो गये। इसके कुछ दिन पश्चात् श्रीमाँ एक दिन भाइयों के घर में जयरामबाटी में बैठी थीं। छोटे भाई अभय की विधवा पत्नी तब बिल्कुल पागल थी। श्रीमाँ ने देखा-सुरबाला कुछ गुदड़ी बगल में दबाये अपने खयाल में चली जा रही है और उसकी शिशु-कन्या राधू घुटनों के बल रोते-रोते उसके पीछे चली जा रही है। देखकर श्रीमाँ की छाती के भीतर कुछ अजीब-सा हुआ। उन्होंने सोचा : 'यदि मैं इसे नहीं देखूँगी तो और कौन देखेगा? बाप नहीं, माँ बद्ध पागल है।' दौड़कर उन्होंने राधू को गोदी में उठा लिया, उसी समय ठाकुर दर्शन देकर बोले, 'यही है वह लड़की, इसी का आसरा रखो, यह योगमाया है।'

इस प्रकार राधू के कारण श्रीमाँ का उचाट मन जगत् में लौट आया। उसी के परिणामस्वरूप दुनिया तैंतीस वर्षों तक श्रीमाँ की ऐसी अपूर्व मातृलीला को देख पायी, जिसका दृष्टान्त दुनिया में दूसरा नहीं। बाद में श्रीमाँ ने स्वयं ही कहा, 'देखो, सब कहते हैं कि मैं "राधू-राधू" करते ही अस्थिर रहती हूँ, उस पर मेरी बड़ी आसक्ति है। यह आसक्ति न होती तो ठाकुर के देहावसान के बाद यह देह भी न रहती। अपने काम के लिए तो "राधी-राधी" कराकर उन्होंने इस शरीर को रखा है।'

* * * *

देहत्याग से पूर्व श्रीरामकृष्ण ने श्रीमाँ से कहा था, 'कोलकाता के लोग अँधकार में कीड़ों की तरह किलबिला रहे हैं। बाद में स्वामी अरूपानन्द (रासबिहारी महाराज) को श्रीमाँ ने एक दिन यह बात कही तो उन्होंने हाथ से सारी दुनिया को दिखा दिया। अर्थात् कोलकाता तो प्रतीक है, युगावतार सारी दुनिया को देखने का भार उन्हें दे गये हैं। अँधकार में दिग्भ्रान्त जगद्वासियों को रोशनी दिखाने, शान्ति से भर

देने के काम के लिए ही इस सचल मातृप्रतिमा को छोड़ गये थे श्रीरामकृष्ण। श्रीमाँ की माता श्यामासुन्दरीदेवी प्रायः यह आक्षेप करती : 'ऐसे पागल जमाई के साथ अपनी सारदा को ब्याह दिया! आहा! न घर-संसार कर पायी, न बच्चे हुए; न "माँ" शब्द सुन पायी।' उनका आक्षेप सुनकर श्रीरामकृष्ण ने कहा था, 'सासजी, इसके लिए आप दुःखी न हों; आपकी बेटी के इतने बच्चे होंगे कि "माँ" की पुकार सुनते-सुनते परेशान हो जाएगी।' ठाकुर के देहत्याग के बाद चींटियों की कतार की तरह एक-एककर उन बच्चों ने आना शुरू किया परन्तु 'माँ' की पुकार सुनकर श्रीमाँ कभी परेशान नहीं हुईं।

* * * *

सन् १८९० में रामकृष्ण संघ के छठे अध्यक्ष विरजानन्द श्रीरामकृष्ण की संन्यासी सन्तानों के संस्पर्श में आये। वराहनगर मठ में वे उन्हीं के बीच रहते तथा ठाकुर-माँ-स्वामीजी की बातें सुनते। स्वामीजी पश्चिम में धर्मप्रचार में व्यस्त थे, किन्तु श्रीरामकृष्ण की लीलासंगिनी श्रीमाँ जयरामबाटी में स्थूल शरीर में ही थीं। स्वामी विरजानन्द (तब तरुण ब्रह्मचारी कालीकृष्ण) का मन श्रीमाँ के दर्शन को व्याकुल हो उठा। सुअवसर भी आ पहुँचा। जगद्धात्री पूजा के अवसर पर स्वामी सारदानन्द के साथ वे जयरामबाटी को चले। जयरामबाटी पहुँचकर उन्होंने चरणस्पर्श कर श्रीमाँ को प्रणाम किया। श्रीमाँ ने भी स्नेह से उनकी ठुड्डी का स्पर्श किया। उन सभी को पाकर श्रीमाँ के आनन्द की सीमा न रही। क्या करें, कहाँ ठहराएँ, क्या पकाकर खिलाएँ, कुछ समझ ही नहीं पा रही थीं। दिन-रात श्रीमाँ उनके आराम को लेकर चिन्तित रहतीं। दोनों वक्त उनके लिए स्वयं विभिन्न व्यंजन पकातीं। श्रीमाँ इतने अच्छे-अच्छे पकवान बनातीं और इतने स्नेह-मनुहार से खिलातीं कि प्रतिदिन कालीकृष्ण प्रायः दुगुना खा डालते। 'वह खाना इतना सुस्वादु और मधुर लगता कि कहा नहीं जा सकता। मानो नैसर्गिक कुछ हो अभी भी मानो मुँह में

स्वाद लगा हो!'—उन बातों का स्मरण बाद में करते हुए स्वामी विरजानन्द कहते थे।

महा आनन्द में कालीकृष्ण के दिन कटने लगे। बालक होने के कारण श्रीमाँ की व्यक्तिगत फरमाइशों का भार भी उनपर पड़ने लगा जिसके कारण वे श्रीमाँ के पास अबाध रूप से अन्तःपुर में जा पाते थे। बीच-बीच में स्वामी सारदानन्द चिलम की आग लेकर आने के लिए कालीकृष्ण को श्रीमाँ के पास भेजते। किन्तु बेटे के हाथ क्या आग देनी चाहिए? इसलिए श्रीमाँ पहले चिमटे से उठाकर आग जमीन पर रख देतीं, फिर कालीकृष्ण को उठा लेने को कहतीं। इस प्रकार हर क्षण श्रीमाँ की स्नेह-सुधा का आस्वादन कर कालीकृष्ण आनन्द विभोर हुए रहते। इसके पश्चात् जगद्धात्री पूजा निर्विघ्न सम्पन्न हो गयी। कालीकृष्ण ने जितनी मेहनत की उतना ही आनन्द भी पाया। पूजा के कुछ दिन बाद ही स्वामी सारदानन्द व कालीकृष्ण सहित चार जनों को मलेरिया हो गया। श्रीमाँ की चिन्ता का कोई अन्त नहीं। केवल कहतीं : 'हे माँ, क्या होगा, सारे बच्चे पड़े-पड़े कष्ट पा रहे हैं। गाँव ऐसा है कि दूध-साबूदाने के लिए दूध भी नहीं मिलता।' विरजानन्द ने लिखा है : श्रीमाँ स्वयं हाथ में लोटा लेकर घर-घर जाकर उनके लिए दूध भिक्षा कर लातीं । जिसके पास जितना मिल जाए - पाव, आधपाव, छटाकभर - घूम-घूमकर ले आतीं। ... (और) बीच-बीच में आकर दरवाजे के बाहर रहकर हाल-चाल पूछतीं। वह क्या स्नेह और करुणामयी दृष्टि थी!' कुछ दिनों में ही सबका ज्वर ठीक हो गया और श्रीमाँ की स्नेह-सेवा से सभी स्वस्थ हो उठे।

वहाँ रहने से ही श्रीमाँ की दुश्चिन्ता और परिश्रम बढ़ेगा एवं मलेरिया का फिर आक्रमण हो सकता है—यह सोचकर श्रीमाँ की अनिच्छा के बावज़ूद सारदानन्दजी ने कोलकाता लौटने का निश्चय किया। दोपहर को खा-पीकर जब सब बैलगाड़ी पर चढ़े तो एक

मर्मस्पर्शी दृश्य उपस्थित हुआ। श्रीमाँ खिड़की-दरवाजे के सामने आकर खड़ी हुई। देखा, उनकी आँखों से अविराम अश्रुधार बह रही है। रो-रोकर आँख-मुँह लाल हो गये थे। उनका कष्ट देखकर कालीकृष्ण और अन्य सभी का हृदय भी व्यथित हो उठा, वे भी अपने आँसू न रोक पाये। बैलगाड़ी जब चल पड़ी तो थोड़ी दूरी तक श्रीमाँ भी पीछे-पीछे आने लगीं, रोकने पर भी सुना नहीं। मानो बच्चों को किसी भी प्रकार विदाई न दे पा रही हों। तालपोखर पार होकर गाड़ी गाँव के बाहर विस्तृत मैदान में पहुँची। कालीकृष्ण ने पीछे घूमकर देखा : श्रीमाँ तालपोखर के पास ही खड़ी हैं। जब तक गाड़ी आँखों से ओझल नहीं हुई, श्रीमाँ वैसे ही खड़ी उन लोगों की ओर देखती रहीं। कालीकृष्ण अवाक् हो सोचने लगे :'ऐसा अकल्पनीय स्नेह क्या अपनी माँ भी दे सकती है? घर की माँ को तो खूब प्यार कर चुका हूँ, वे भी कितना स्नेह करती थीं, किन्तु ये तो जन्मजन्मान्तर की माँ हैं, चिरकालिक अपनी माँ!'

* * * *

रामकृष्ण संघ के अष्टम अध्यक्ष स्वामी विशुद्धानन्दजी का प्रथम मातृदर्शन का अनुभव भी ऐसा ही विस्मयकारी था। शैशव में ही माता-पिता का साया उनके सिर पर से उठ गया था। सन् १९०४ में मैक्समूलर की पुस्तक 'रामकृष्ण : हिज़ लाइफ एण्ड सेइंग्स' पढ़कर वे श्रीरामकृष्ण की ओर आकृष्ट हुए। फिर शुरू हुआ दक्षिणेश्वर आवागमन। एक दिन दक्षिणेश्वर में बैठकर ही सुना : 'स्वामी-शिष्य-संवाद' प्रणेता शरत्चन्द्र चक्रवर्ती श्रीरामकृष्ण के भतीजे रामलाल चट्टोपाध्याय से पूछ रहे हैं : 'माँ कैसी हैं?' माँ ! इस छोटे-से शब्द ने मातृहारा तरुण के मन में तूफान मचा दिया। वे सोचने लगे : 'कौन हैं माँ ! कहाँ हैं वे?' रामलाल भैया से पूछने पर उसी दिन उन्हें पता चला : 'माँ' हैं श्रीरामकृष्ण की लीलासंगिनी जो अभी भी जयरामबाटी में हैं। उसी दिन

उन्होंने जयरामबाटी जाने का पथ भी जान लिया, फिर कुछ दिनों में ही मातृदर्शन के लिए रवाना हुए ।

(बर्दवान) वर्धमान होते हुए बड़ी तकलीफ से क्लान्त शरीर से वे जा रहे थे जयरामबाटी, मन भी कई चिन्ताओं के कारण कुछ अवसन्न था—श्रीमाँ उन्हें किस प्रकार ग्रहण करेंगी। 'भगवान् श्रीरामकृष्णदेव की लीलासंगिनी, देवीसदृशा महीयसी साधिका के पास जाकर वे कहेंगे क्या? यही सब सोचकर वे अकुला रहे थे। सोच रहे थे कि यदि कोई ले जाकर श्रीमाँ से उनका परिचय करवा देता तो अच्छा होता। किन्तु सारा उद्वेग और संशय दूर हो गया जब सचमुच वे श्रीमाँ के समक्ष उपस्थित हुए। देखते ही श्रीमाँ ने पूछा, "कैसे हो, बेटा? आने में कुछ कष्ट तो नहीं हुआ?" बहुत दिनों बाद बेटा घर लौटे तो माँ जिस तरह पूछती है, ठीक वैसे ही। अपने पास उन्हें बैठने को कहा। उनके सीने से सारा भार उतर गया। मन ही मन उन्होंने अनुभव किया : सचमुच ये माँ ही हैं। इस प्रथम दर्शन की बात याद करते हुए स्वामी विशुद्धानन्दजी ने कहा : अकारण स्नेह क्या होता है, जीवन में पहली बार उस दिन समझा था।

बाद में उस स्नेह का आस्वाद बारम्बार करते रहे। श्रीमाँ से ही उन्होंने मन्त्रदीक्षा ली। सन् १९०७ में श्रीमाँ के सामने ही उन्होंने तथा और दो गुरुभाइयों ने संन्यास ग्रहण किया। श्रीमाँ ने उन्हें संन्यास-वस्त्र प्रदान कर आशीर्वाद देते हुए प्रार्थना की थी : 'ठाकुर इनके संन्यास की रक्षा करना। पहाड़-पर्वत, वन-जंगल कहीं भी ये हों, इन्हें खाने को कुछ देना।' संन्यास की तलवार की धार सरीखी राह पर सन्तान को ठेलने के बावज़ूद यह प्रार्थना किये बिना न रह पायीं—इन्हें खाने को कुछ देना। विशुद्धानन्द को भी यह अहसास हुआ; सारे सांसारिक रिश्ते-नाते उन्होंने त्याग दिये हैं—माता-पिता, भाई-बहन सब—किन्तु एक रिश्ता फिर भी रह गया और वह रिश्ता था जन्मजन्मान्तर की माँ,

चिरकालिक माँ का। जो इहलोक-परलोक के सबकुछ को व्याप्त कर स्वेच्छया संसार में वास कर रही हैं संसार के उस पार सन्तान को ले जाने के लिए।

और एक बार की घटना है। काशी से वे और स्वामी अचलानन्द जयरामबाटी आये थे। कुछ गृहस्थ भक्त भी वहाँ थें। रात्रि का भोजन सबने एक साथ बैठकर खाया। खाने-पीने के काफी देर बाद जब वे सोने की तैयारी कर रहे थे, श्रीमाँ ने दोनों को बुलवाया। गये तो देखा दो हाथों में दो ग्लास दूध लिये श्रीमाँ खड़ी हैं। कहा, 'पियो'। सब भक्तों को देने योग्य दूध नहीं था। श्रीमाँ ने कहा, 'बेटा ! वे (गृहस्थ भक्त) तो घर में बहुत पी सकते हैं, परन्तु तुम लोगों को कौन पिलाएगा, बोलो?'

विशुद्धानन्दजी श्रीमाँ के विषय में कहते : 'सीमाएँ तोड़नेवाली माँ'।

* * * *

गिरीश घोष के जीवन में श्रीमाँ का 'आविर्भाव' अलौकिक राह से और श्रीरामकृष्ण के साथ साक्षात्कार से भी पहले हुआ था। युवक गिरीश तब हैजा-रोग से आक्रान्त थे। बचना मुश्किल था। ऐसी अवस्था में उन्होंने एक दिन स्वप्न देखा : एक अपूर्व मातृमूर्ति ने महाप्रसाद उनके मुँह में देकर कहा, 'खाओ'। उन्होंने लाल किनार की साड़ी पहनी थीं, देह में अपार्थिव ज्योति तथा मुखमण्डल पर था अपूर्व स्नेह। प्रसाद खाते-खाते उनकी नींद टूट गयी किन्तु मुँह में प्रसाद का स्वाद लगा हुआ था। देवीमूर्ति की तस्वीर मन में अंकित हो गयी। इसके पश्चात् धीरे-धीरे गिरीश स्वस्थ हो उठे। उनके जीवन में कई परिवर्तन हुए। इतने दिनों से उन्होंने जबरन अपने ऊपर नास्तिकता का एक आवरण लाद रखा था। इससे पूर्व कुठाराघात से दुर्गामूर्ति खण्डित करने में जिसके हाथ नहीं काँपे, जो शिवलिंग को कलुषित कर यह परीक्षा करते कि सचमुच शिव कुपित होते हैं या नहीं, किन्तु इस

घटना के बाद उनकी देवभक्ति लौट आई। इसके बाद उन्होंने 'चैतन्यलीला' नाटक लिखा और मंचस्थ किया। सारा बंगाल भक्तिरस से आलोड़ित हो उठा एवं इस नाटक के माध्यम से ही श्रीरामकृष्ण के साथ उनका परिचय हुआ और जीवनधारा बदल गयी। उन्होंने स्वयं को श्रीरामकृष्ण के चरणों में समर्पित कर दिया। ठाकुर ने उनका सारा भार ले लिया और उनकी भक्ति-विश्वास की प्रशंसा करते हुए कहते : उसमें सत्रह आना भक्ति है।—भक्ति मानो उमड़ी पड़ रही है।

श्रीमाँ के चरण-स्पर्श और उनके श्रीमुख का दर्शन करने से पहले ही गिरीश घोष ने जगज्जननी के रूप में श्रीमाँ की भक्ति शुरू कर दी थी। सन् १८९० के आखिरी दिनों की बात है। श्रीमाँ उन दिनों वराहनगर के एक मकान में थीं। गिरीश अपनी दूसरी पत्नी के शिशु को लेकर उस मकान में आये। वहाँ आते ही पुत्र श्रीमाँ को देखने के लिए व्याकुल हो उठा। उसने पहले भी श्रीमाँ को देखा था पर गिरीश ने नहीं देखा था। हाव-भाव से उह-उह करके पहली मँजिल पर श्रीमाँ जिस कमरे में थीं उस कमरे को दिखाने लगा। एक सेवक उसे ऊपर ले गया तो श्रीमाँ के चरणों पर उसने प्रणाम किया और नीचे आकर पिता को भी ऊपर ले जाने के लिए हाथ पकड़कर खींचने लगा। गिरीश घोष उच्च-स्वर में रोते-रोते बोले, 'ओरे ! मैं माँ को देखने क्या जाऊँ—मैं तो महापापी हूँ।' किन्तु शिशु ने छोड़ा नहीं तो उसे गोद में उठा अश्रुजल बहाते हुए गिरीश ऊपर गये एवं श्रीमाँ के चरणों में साष्टांग प्रणाम कर बोले, 'माँ, इसके (पुत्र के) कारण ही मैं तुम्हारे श्रीचरणों का दर्शन कर पाया।'

उस दिन चरण-स्पर्श करने के बावज़ूद वे मातृमुख-दर्शन नहीं कर पाये क्योंकि लज्जावती श्रीमाँ घूँघट से मुँह ढके रखतीं। मातृमुख का दर्शन बाद में सन् १८९१ में जयरामबाटी में कर पाए थे। जयरामबाटी पहुँचकर, पहले उन्होंने स्नान किया, फिर भीगे कपड़ों में श्रीमाँ को

प्रणाम करने चले। श्रीमाँ के चरणों में मस्तक टिकाकर प्रणाम करने के पश्चात् दृष्टि ऊपर उठाते ही देखा, श्रीमाँ के मुख से घूँघट हट गया था। श्रीमाँ के मुँह को देखते ही वे चौंक उठे और बोले, 'ऐं, माँ तुम !' यह वही मातृमूर्ति थी जिसने बहुत पहले स्वप्न में उन्हें दर्शन दिया था। वे समझ गये, यह देवी ही उनकी सतत रक्षा करती आ रही हैं। फिर भी माँ के मुख से ही घटना की सच्चाई जानने के लिए बाहर आकर अन्य एक व्यक्ति से श्रीमाँ को पुछवाया कि श्रीमाँ ने सचमुच क्या उस प्रकार उन्हें दर्शन दिया था। श्रीमाँ ने स्वीकार किया।

इसके बाद एक दिन श्रीमाँ से गिरीश घोष ने प्रश्न किया था, 'तुम किस प्रकारं की माँ हो?'—श्रीमाँ ने एक अपूर्व उत्तर दिया था, 'मैं सचमुच की माँ हूँ; गुरुपत्नी नहीं, बनाई हुई माँ नहीं, मुँहबोली माँ नहीं —सत्य जननी।'

उस बार जयरामबाटी में गिरीशबाबू कई दिन रहे। एक दिन कालीमामा (श्रीमाँ के भाई) ने गिरीश घोष से कहा, 'तुम लोग दीदी को "माँ जगदम्बा, जगज्जननी" इत्यादि कितना कुछ कहते हो। पर, हमने तो एक ही माँ की कोख से जन्म लिया, मुझे तो कुछ भी समझ में नहीं आता।' गिरीश घोष दृढ़ गम्भीर स्वर में बोले, 'क्या कह रहे हो? तुम एक साधारण गँवई ब्राह्मण-सन्तान हो—पूजा-पाठ, पठन-पाठन आदि ब्राह्मण के काम छोड़ खेती-बाड़ी कर जीवन-यापन कर रहे हो। और असम्भव को सम्भव करनेवाली महामाया बड़ी बहन के रूप में क्या सारा जीवन तुम्हें भुलावे में रख सकती है? जाओ, यदि इहलोक और परलोक से मुक्ति चाहिए तो अभी श्रीमाँ के चरणकमल में शरण लो। मैं कहता हूँ, जाओ।' इन बातों में एक प्रकार की शक्ति थी इसलिए कालीमामा सचमुच अपनी दीदी के पास जाकर उनके पैर पकड़कर बैठ गये। श्रीमाँ ने कहा, 'अरे काली, मैं तो तेरी वही दीदी हूँ। आज तू यह क्या कर रहा है?' कालीमामा मानो निश्चिन्त हुए कि उनकी ही धारणा

सही है। वे लौट आये। गिरीशबाबू ने उन्हें फिर भेजना चाहा किन्तु मामा गये नहीं।

गिरीश घोष देखते कि उनके बिस्तर की चादर रोज दुधिया सफेद होती। कौन धो देता है रोज उनकी चादर? एक दिन खुद अपनी आँखों से देखा कि पोखर-घाट पर श्रीमाँ साबुन से उनकी चादर धो रही हैं।

गिरीशबाबू को सुबह होते ही चाय पीने की आदत थी, पर गाँव में दूध नहीं मिलता। वातरोग से रुग्ण पैरों से श्रीमाँ सुबह उनके लिए दूध की तलाश में निकलतीं और यहाँ-वहाँ से दूध संग्रह कर लातीं। श्रीमाँ की स्नेह-सेवा से गिरीशबाबू अभिभूत हो गये थे।

सन् १८९६ में श्रीमाँ जब कोलकाता में सरकार बाड़ी लेन की गोदामबाड़ी में थीं, तब भी गिरीशबाबू वहाँ जाकर प्राय: श्रीमाँ को प्रणाम कर आते। जिस दिन श्रीमाँ को उस बाड़ी से लौटकर जयरामबाटी जाना था, गिरीश का मन बड़ा भारी हो गया। उस दिन भी वे आये और स्वामी योगनन्द को लेकर ऊपर श्रीमाँ के पास चले गये। श्रीमाँ को पूरी भक्ति से साष्टांग प्रणाम किया फिर हाथ जोड़कर कहने लगे, 'माँ, तुम्हारे पास जब आता हूँ तो मुझे लगता है जैसे मैं छोटा-सा शिशु हूँ और अपनी माँ के पास आया हूँ। पर, वयस्क पुत्र हूँ, माँ की सेवा कर सकता हूँ। किन्तु सारा मामला ही उल्टा है, तुम हमारी सेवा करती हो, हम तुम्हारी सेवा नहीं करते। अब जयरामबाटी जा रही हो। वहाँ गाँव के चूल्हे के पास बैठकर देश के लोगों के लिए खाना पकाओगी और उनकी सेवा करोगी। मैं तुम्हारी सेवा कैसे करूँ? और महामायी की सेवा का मुझे ज्ञान कहाँ है?' बोलते-बोलते भावावेग में उनका गला रुँध गया। फिर सभी की ओर देखकर कहने लगे, 'भगवान् हमारी तरह ही मनुष्यरूप में जन्म लेते हैं—यह विश्वास करना मनुष्य के लिए कठिन है। तुम लोग क्या यह सोच सकते हो कि तुम्हारे सामने ग्रामबाला वेश में जगदम्बा खड़ी हैं? तुम लोग क्या यह कल्पना भी

कर सकते हो कि महामाया साधारण स्त्रियों की तरह गृहकन्या हैं और हर प्रकार का काम करती हैं? जबकि वे स्वयं जगज्जननी, महामाया, महाशक्ति हैं—सभी जीवों की मुक्ति और मातृत्व के आदर्श की स्थापना के लिए जिनका आविर्भाव हुआ है।' गिरीशबाबू की इन बातों से वातावरण भाव-गम्भीर हो उठा।

* * * *

जयरामबाटी में भोजन के बाद पत्तल उठाकर जब भक्तगण स्थान साफ करने जाते तो श्रीमाँ कहतीं, 'रहने दो, उसके लिए आदमी हैं।' बाद में वह काम वे स्वयं ही करतीं। श्रीमाँ की रिश्तेदारिनें हर वर्ण की जूठन साफ करना नहीं चाहतीं, श्रीमाँ से भी शिकायत के स्वर में कहतीं, 'तुम ब्राह्मण कन्या हो—गुरु हो, वे तुम्हारे शिष्य हैं, तुम उनकी जूठन क्यों उठाती हो?' श्रीमाँ उत्तर देतीं, 'मैं तो माँ हूँ, बेटों के लिए माँ नहीं करेगी तो और कौन करेगा?' स्वामी विश्वेश्वरानन्द जूठा उठाने लगे तो माँ ने हाथ पकड़कर उन्हें रोका और थाली खुद ले ली। बोलीं, 'मैंने तुम्हारा और क्या (काम) किया है। माँ की गोद में बेटा मलत्याग कर देता है, कितना कुछ करता है? तुम लोग तो देवता के दुर्लभ धन हो।' श्रीमाँ को एक दिन जूठन साफ करते देख नलिनीदेवी ने कहा था, 'ओ माँ, छत्तिस जात की जूठन उठा रही हो !' सुनकर श्रीमाँ ने कहा, 'सब तो मेरे अपने हैं, छत्तिस कहाँ?'

* * * *

एक संन्यासी ने एक दिन श्रीमाँ से पूछा, 'आप मठ के साधुओं को उनके संन्यास-नाम से क्यों नहीं बुलातीं?' श्रीमाँ ने उत्तर दिया, 'मैं माँ हूँ ना, संन्यास-नाम से पुकारने पर मन में चोट लगती है।' अन्य एक संन्यासी ने प्रश्न किया, 'आप हमें किस दृष्टि से देखती हैं?' श्रीमाँ ने उत्तर दिया, 'नारायण के रूप में देखती हूँ।' उसी संन्यासी ने कहा,

'हम तो आपकी सन्तान हैं, नारायण के रूप में देखने से तो फिर सन्तान के रूप में नहीं देखा जा सकता।' श्रीमाँ ने कहा, 'नारायण के रूप में भी देखती हूँ और सन्तान के रूप में भी।'

* * * *

श्रीमाँ से दीक्षा लेकर कोई लड़का शायद घर को रवाना हुआ और थोड़ी देर में ही आँधी-पानी शुरू हो गया। अत्यन्त चिन्तित हो श्रीमाँ अनवरत कहती रहीं, बेटा जा रहा है, अब तक वह अमुक जगह पहुँचा होगा; वहाँ उसे कोई आश्रय मिला होगा या नहीं !—श्रीमाँ के समीप जो लोग रहते, ऐसा दृश्य उनके लिए काफी परिचित था। विभूतिबाबू एक बार जयरामबाटी से अपने कर्मस्थल लौटे। रास्ते में कीचड़-पानी और द्वारकेश्वर नद पार हो अगले रविवार जब वे फिर आये तो श्रीमाँ ने उनसे कहा, 'विभूति, तुम चले गये; बारिश हो रही थी और मैं सोच रही थी, मेरा विभूति अब तक तो नदी पार हो गया होगा।'

सन्तान की तकलीफ से अभिभूत होकर इस प्रकार कभी-कभी श्रीमाँ ने अपनी अलौकिक देवीशक्ति का भी प्रयोग किया। स्वामी महादेवानन्द ने भी कहा है, 'सावन के महीने में अविराम वृष्टि हो रही थी। कुछ सब्जी-तरकारी लेकर कोआलपाड़ा मठ से जयरामबाटी पहुँचते ही श्रीमाँ मुझसे बोलीं, 'आये हो? अच्छा हुआ। अनेक दिनों से कोई आया नहीं, बाजार से माल-असबाब आया नहीं है, आज से सौदा तुम्हीं लाकर दे जाना। शाम को हल्दीपुकुर में मिट्टी का तेल, आटा, चीनी, घी, मैदा, मिश्री इत्यादि बहुत सारा सामान खरीदकर लाने गया। सब मिलाकर प्रायः एक मन होगा। दुकानदार बोला, 'आप नहीं उठा पायेंगे, आदमी बुला दूँ?' श्रीमाँ ने कुली लाने को कहा नहीं था, अतः कुली करना उचित न होगा यह सोचकर मैंने कहा, 'कुली की ज़रूरत नहीं है, मैं उठा सकूँगा, आप डलिया मेरे सिर पर उठवा दें। कुछ दूर जाते न जाते बोझ बहुत भारी मालूम हुआ और सिर में जलन होने

लगी। ऊपर से बरसात—एक हाथ से डलिया के ऊपर छाता पकड़ रखा था; फिसलनवाले रास्ते में सावधानी से चलना पड़ रहा था। मन ही मन मैं खुद से कह रहा था—फिसलने से नहीं चलेगा, ये बोझा मुझे लेकर जाना ही होगा। रास्तें में बैलगाड़ी जाने का थोड़ा-सा नीचा रास्ता पार करना पड़ता है। किसी प्रकार वह रास्ता ज्योंही पार किया ऐसा लगा कि बोझा बिल्कुल हल्का हो गया है। ये कैसे सम्भव हुआ ठीक से समझ न पाने के कारण मिनट भर रुका, फिर आराम से श्रीमाँ के घर चला आया।

मकान में घुसते ही देखा श्रीमाँ अपने कमरे के बरामदे में एक बार पश्चिम से पूर्व, फिर पूर्व से पश्चिम की ओर तेज चहलकदमी कर रही हैं। चेहरा बिल्कुल लाल, आँखें दोनों सिर पर चढ़ी हुई हैं। और स्वगतोक्ति कर रही थीं, 'क्यों मैंने कुली करने को नहीं कहा?' बोझा जब उतार दिया तो बोलीं, 'एक कुली कर लेना था। मैंने कहा नहीं तो क्या हुआ? भला इस प्रकार आया जाता है?'

* * * *

प्रसन्नमामा की पुत्री नलिनी एक मुसलमान मज़दूर को खाना दे रही थी। परोसने के समय आँगन से प्राय: फेंक-फेंककर वह भोजन दे रही थी। अचानक उसके इस व्यवहार पर श्रीमाँ की नज़र पड़ी। देखते ही श्रीमाँ ने कहा, 'यह क्या ! इस प्रकार क्या किसी को खाना परोसा जाता है?' श्रीमाँ नलिनी के हाथ से थाली लेकर खुद परोसने लगीं। फिर जब जूठन साफ कर गोबर-जल छींटे दे रही थीं तो नलिनी दीदी ने कहा, 'बुआ, तुम्हारी तो जात चली जाएगी।' श्रीमाँ ने उत्तर दिया, 'बेटे की जूठन साफ करने से क्या माँ की जात जाती है, भला !'

* * * *

उद्बोधन में एक दिन पूर्व बंगाल की एक लड़की को श्रीमाँ ने दीक्षा

दी। दीक्षा के पश्चात् उसे पास बिठाकर दोपहर का भोजन कराया। फिर उसके हाथ में एक लोटा जल देकर श्रीमाँ ने कहा, 'हाथ धो लो !' हाथ धुल जाने के बाद और एक लोटा जल देकर श्रीमाँ ने कहा, 'पैर धोओ।' मातृस्नेह का आस्वाद पाकर लड़की रो पड़ी, किन्तु श्रीमाँ के आदेश का पालन कैसे करे ! श्रीमाँ ने कहा, 'तू मेरी कौन है?' उसने उत्तर दिया, 'मैं तुम्हारी बेटी हूँ।' तब श्रीमाँ ने कहा, 'तो मैं जो कहती हूँ, सुन। पैर धो।'

* * * *

श्रीमाँ के तीन भाई कालीमामा, वरदामामा और प्रसन्नमामा घोर सांसारिक थे। रुपये के अलावा वे कुछ समझते ही नहीं थे। कभी-कभी श्रीमाँ कहतीं, 'बाबा, केवल रुपया-रुपया ही करते रहे। खाली धन दो, धन दो—भूले से भी कभी ज्ञान-भक्ति नहीं माँगी। तो जो चाहते हो, वही लो।' गिरीश घोष ने मामाओं के क्रियाकलाप देखकर मन्तव्य किया था कि उन्होंने पिछले जन्मों में सिर काटकर तपस्या की थी, इसीलिए वर्तमान जन्म में उन्हें भगिनीरूप में स्वयं जगदम्बा मिली हैं।

१३२५ (बंगाब्द) साल के पौष माह की घटना है। दिन के दस-ग्यारह बजे श्रीमाँ जयरामबाटी में सदर दरवाजे के चबूतरे पर बैठी थीं। खलिहान के रास्ते की तरफ कालीमामा कुछ इस प्रकार अवरोध बने हुए थे कि वरदामामा को धान का बोरा लाने में असुविधा हो रही थी। इस बात को लेकर पहले दोनों मामाओं में तूतू-मैंमैं और फिर हाथापाई की नौबत आ गयी। यह सब देखकर श्रीमाँ स्थिर न रह पायीं। उनके पास जाकर कभी इसको कहतीं, 'तेरी गलती है' तो कभी उसको पकड़कर खींचतीं। इसी समय साधुओं के चले आने से दोनों में हाथापाई नहीं हुई। दोनों भाई गर्जन-वर्जन करते अपने-अपने कमरे में चले गये। श्रीमाँ भी गुस्से में बरामदे के ऊपर पैर झुलाकर बैठ गयीं,

किन्तु क्षणभर में ही उनका क्रोध जाने कहाँ चला गया। अचानक हँसते-

हँसते बोलीं, 'महामाया की कैसी माया है ! अनन्त पृथ्वी पड़ी हुई है—यह सब पड़ा ही रहेगा। इतनी-सी बात किन्तु जीव समझ नहीं पाता।'—इतना कहकर श्रीमाँ हँसी से लोटपोट हो गयीं। हँसी रुक ही नहीं पा रही थी।

* * * *

प्रसन्नमामा की प्रथम पत्नी रामप्रियादेवी की दो लड़कियाँ नलिनी और माकू (सुशीला) श्रीमाँ के साथ ही रहती थीं। मातृहीना, ससुराल से परित्यक्ता ये दोनों बहनें श्रीमाँ के विशेष स्नेह की पात्र थीं। इनमें नलिनी में पाक-साफ रहने की सनक थी। और पगली मामी सुरबाला के साथ उनका था साँप-नेवले का सा सम्बन्ध। किन्तु इन सबको लेकर श्रीमाँ शान्त भाव से परिवार चलातीं। किस प्रकार इन सबको मना-बुझाकर चलतीं, इस बारे में स्वयं उन्होंने कहा है, 'चाहे जो कर लो, सभी को थोड़ा-सा मान देकर उनका परामर्श सुनना ही पड़ता है। थोड़ी-सी दूरी से हर तरफ दूर-दूर तक नज़र रखनी पड़ती है—ताकि अधिक कुछ खराब न हो। मैं यह जो राधू के घर (राधू का विवाह ताजपुर में हुआ था) में भेंट भेजूँगी वह नलिनी से परामर्श कर। उसमें और छोटी बहू में साँप-नेवले का सम्बन्ध है—न यह उसका भला देख सकती है, न वह इसकी छाया तक के पास आना चाहती है—किन्तु मैं जब नलिनी को अभिभावक बनाकर उसका परामर्श माँगती हूँ और कहती हूँ, "देख नलिनी, सब देख-सुनकर बता तेरी पसन्द क्या है"—तब वस्तुओं की जो सूची मैं उसे देती हूँ, तो उस पर वह कहती है, "उसमें कैसे होगा, बुआ? वे जैसा भी व्यवहार करें—किन्तु तुम्हारी तो एक मर्यादा है, तुम इतनी छोटी नज़र क्यों दिखाओगी, बुआ? तुम अपने हिसाब से करती जाओ"—यह कहकर वह सूची बढ़ा देती है। मैं मन ही मन हँसती। उसको इतना-सा बताए बिना यदि मैं भेंट भेज दूँ तो इसी बात पर दोनों में कुरुक्षेत्र छिड़ जाए। देखो, सभी को कुछ-

कुछ अधिकार देकर स्वयं कुछ नीचा होकर चलना पड़ता है। इन उधमी लड़कियों को लेकर हवा का रुख समझकर कितनी सावधानी से चलती हूँ; फिर भी इनमें बीच-बीच में छिड़ जाती है, यही इनका स्वभाव है ! क्या करूँ, बताओ? सोचती हूँ, उनकी गृहस्थी, वह देख रहे हैं।'

* * * *

योगीन-माँ के मन में एक बार सन्देह जागा : 'ठाकुर को देखती हूँ इतने त्यागी, किन्तु श्रीमाँ को घोर संसारी या गृहस्थ के रूप में देखती हूँ—दिन-रात भाई, भतीजे और भतीजियों को लेकर ही हैं।' इसके कुछ दिन पश्चात् एक दिन वह गंगा किनारे बैठी जाप कर रही थीं कि भावचक्षुओं से देखा, श्रीरामकृष्ण उनके सामने आकर कह रहे हैं, 'देख, देख, गंगा में क्या बहा जा रहा है?' योगीन-माँ ने देखा रक्तरंजित नाड़ी-नाल से लिपटे एक नवजात शिशु की मृत देह बही जा रही है। श्रीरामकृष्ण हँसकर कहते हैं, 'गंगा क्या कभी अपवित्र होती है? उसको (श्रीमाँ को) भी वैसा ही समझो। कभी सन्देह मत करना। उसको और इसको (अपनी देह को दिखलाकर) अभिन्न समझना।'

* * * *

एक गृहस्थ युवक-भक्त ने श्रीमाँ से कहा, 'माँ, संसार में मैंने अनेक दुःख और क्लेश पाये हैं; तुम ही मेरी गुरु हो, मेरी इष्ट हो, मैं और कुछ नहीं जानता ! सचमुच मैंने इतने गलत काम किये हैं कि तुम्हें भी शर्म से बता नहीं सकता। फिर भी तुम्हारी ही दया पर हूँ।' स्नेह-भरा हाथ सन्तान के सिर पर फिराकर श्रीमाँ ने कहा, 'माँ के पास बेटा—सिर्फ बेटा होता है।' उस स्नेहस्पर्श से विगलित हो सन्तान ने क़हा, 'हाँ, माँ, इतनी दया तुमसे मिली है कि कभी मेरे मन में यह बात न आए कि तुम्हारी दया पाना बड़ा सहज है।'

* * * *

मैमनसिंह से भक्तों का एक दल जयराबाटी आया। उनमें से एक श्रीमाँ के घर में आकर बीमार पड़ गया। कुछ ही दिन हुआ श्रीमाँ रोग-शय्या से उठी थीं। सेवकों ने तय किया कि अस्वस्थ भक्त को जयरामबाटी से कोआलपाड़ा आश्रम में स्थानान्तरित किया जाए। वहाँ चिकित्सा भी अच्छी होगी, और श्रीमाँ के घर में भी झमेला कुछ कम होगा। श्रीमाँ को जब इस निश्चय के बारे में बताया गया तो वे नीरव रहीं। समझ में आ गया कि यह व्यवस्था उनके मनोनुकूल नहीं थी। संध्या से पूर्व पालकी आई, एक संन्यासी रोगी को लेकर कोआलपाड़ा आश्रम के लिए रवाना हुए, आकाश के एक कोने में काले बादल का टुकड़ा दिखाई दिया। थोड़ी ही देर में चारों ओर अँधरो छा गया और शुरू हुई तेज बारिश और साथ में अँधड़ का ताण्डव। अस्त-व्यस्त वेश में बरामदे में आकर आसमान की ओर देखकर करुण-स्वर में श्रीमाँ बोलीं, 'मेरे बच्चे का क्या होगा?' सेवक ने उन्हें कमरे में जाने का अनुरोध किया। श्रीमाँ ने ठाकुर से प्रार्थना की, 'ठाकुर, मेरे पुत्र की रक्षा करो।' आँधी का वेग कुछ कम हुआ, श्रीमाँ भी कुछ शान्त हुईं। आँधी का वेग बढ़ा, श्रीमाँ ने भी सजल आँखों से प्रार्थना की, 'तुम्हारी दुहाई है, ठाकुर ! थोड़ा मुँह उठाकर देखो, मेरे बच्चे की रक्षा करो।' सारी रात उसी प्रकार उद्वेग में कटी। अगले दिन जब श्रीमाँ को पता चला कि आँधी के समय उन लोगों ने देशड़ा में रोगी समेत किसी के बैठकखाने में आश्रय ले लिया था, तब जाकर श्रीमाँ की चिन्ता दूर हुई।

* * * *

श्रीमाँ के छोटे-मोटे व्यवहार में भी मातृत्व की स्निग्धता फूट पड़ती। राधू के चाचा-ससुर को श्रीमाँ निमन्त्रण-पत्र लिखवा रही थीं। बोलीं, 'लिखो—बाबा जीवन (पुत्र के लिए सम्बोधन) !' सुनकर राधू की माँ ने कहा, 'यह क्या, तुम्हारे तो समधी होते हैं वे !' श्रीमाँ ने उत्तर दिया, 'होते रहे, मुझे माँ कहकर उसे खुशी मिलती है, तो उसके मैं वही हूँ।'

स्वामी तन्मयानन्द ने एक दिन श्रीमाँ से कहा, 'मैं ठहरा गँवई आदमी, कभी आपको आप कहता हूँ तो कभी-कभी तुम भी कह देता हूँ—हम लोगों को तुम कहने की आदत है। मैं आपका कितना अपराधी हूँ, इसका क्या होगा?' श्रीमाँ ने हँसते-हँसते उत्तर दिया, 'इसमें अपराध कैसा? माँ के साथ बेटा क्या इतना हिसाब-किताब कर बात करेगा?'

* * * *

एक दिन एक तूतिया-मुसलमान कुछ केले लेकर आया और श्रीमाँ से बोला, 'माँ, ठाकुर के लिए ये लाया हूँ, लेंगी क्या?' श्रीमाँ ने लेने के लिए हाथ बढ़ाया और कहा, 'ज़रूर लूँगी, बेटा, दो। ठाकुर के लिए लाये हो, लूँगी क्यों नहीं?' श्रीमाँ की कुछ महिला-भक्त थीं। उन्होंने श्रीमाँ से कहा, 'ये लोग चोर हैं, हम जानते हैं। इनकी चीज़ें ठाकुर को भला क्यों दी जाए?' निरुत्तर हो श्रीमाँ ने केले उठाकर रख लिये और उस मुसलमान को मुरमुरे-मिठाई इत्यादि देने को कहा। उसके जाते ही श्रीमाँ ने उस भक्त का तिरस्कार कर बड़ी गम्भीरता से कहा, 'कौन भला, कौन बुरा, मैं जानती हूँ।' बुरे को उन्नत करने में श्रीमाँ सदैव सचेष्ट रहीं। वे कहा करतीं—'दोष तो मनुष्य में लगे रहते हैं, उन्हें ठीक कैसे किया जाए, यह कितनों को पता है।'

* * * *

देशड़ा-ग्रामवासी हरिदास वैरागी बेहला (वायलीन) बजाकर गाना गाया करते। उन्हीं के मुँह से 'क्या आनन्द की बात है उमे !' गाना सुनकर गिरीशचन्द्र मुग्ध हो गये थे। जीवन के आखिरी दौर में वे बड़े आर्थिक संकट में पड़ गये। एक दिन सुबह दस बजे वे श्रीमाँ के घर जब भिक्षा माँगने आये तो श्रीमाँ ने उन्हें तेल लगाकर स्नान करने को कहा और फिर बरामदे में बिठाकर परम स्नेह से मुरमुरे-गुड़ इत्यादि

प्रसाद दिया। वृद्ध मुरमुरे खा रहे हैं और श्रीमाँ पास में बैठीं बातें करते-करते पान बना रही हैं। वे प्रथम महायुद्ध के दिन थे। चारों ओर चरम दुर्भिक्ष। वृद्ध ने बताया कि उनके पास पहनने को कपड़े नहीं हैं। सुबह स्नान करने के पश्चात् श्रीमाँ ने अपनी नयी साड़ी सूखने के लिए डाली थी। वृद्ध की बात सुनते ही श्रीमाँ ने फौरन वह साड़ी उठाई और उन्हें दे दी। श्रीमाँ की ममता से द्रवित हो अश्रुयुक्त नयनों से हरिदास वैरागी ने वह दान ग्रहण किया।

* * * *

साधना-जीवन के मामले में श्रीमाँ कोई समझौता नहीं करतीं। दक्षिणेश्वर के दिनों में वे रात तीन बजे उठकर जप में बैंठ जातीं। एक भक्त से उन्होंने कहा था, 'जप-तप क्या है, जानते हो? उसके द्वारा इन्द्रियों-विन्द्रियों का प्रभाव कट जाता है।' और एक दिन कहा था, 'जप-ध्यान सब यथासमय आलस्य को त्यागकर करना होता है।' 'रोज पन्द्रह-बीस हजार जप कर सको तो होगा। पहले कोई करे तो सही, न हो तब बोले। हाँ, पर थोड़ा मन लगाकर करना होगा। कोई करेगा तो नहीं, केवल कहेगा—होता क्यों नहीं?'

वे कहतीं : 'काम-काज क्यों नहीं करोगे, काम में मन ठीक रहता है। परन्तु जप, ध्यान, प्रार्थना की भी विशेष दरकार है; कम-से-कम सुबह-शाम तो एक बार बैठना ही चाहिए। यह तो जैसे नाव की पतवार है। शाम को थोड़ा बैठने से दिन भर में भला-बुरा क्या किया, उसका विचार आता है। इसके पश्चात् कल की मानसिक अवस्था से आज की मानसिक अवस्था की तुलना करनी होती है और फिर जप करते-करते अपने इष्टदेव का ध्यान करना होता है। ... काम-काज के साथ सुबह-शाम यदि जप-ध्यान नहीं करोगे तो क्या कर रहे हो या नहीं कर रहे हो, समझोगे कैसे?

एक बार दीक्षा के बाद एक भक्त ने श्रीमाँ से प्रश्न किया, 'माँ

उपाय क्या है?' घर में एक छोटी घड़ी रखी थी, उसे दिखाकर श्रीमाँ ने कहा, 'वो घड़ी जैसे टिक्-टिक् करती रहती है, ठीक वैसे नाम जपते जाओ, उसी से सब होगा, और कुछ भी करना नहीं पड़ेगा।'

* * * *

जप-ध्यान के साथ ही साथ श्रीमाँ ईश्वर के प्रति प्रेम और अनुराग-वृद्धि की बात भी कहतीं। कितनी ही बार उन्होंने कहा, 'मन्त्र-तन्त्र कुछ नहीं, माँ की भक्ति ही सब कुछ है।' 'इतना जप किया कहो या इतना काम किया कहो, कहीं भी कुछ नहीं। महामाया यदि रास्ता न छोड़ें तो किसमें सामर्थ्य है ! हे जीव, शरणागत हो, केवल शरणागत हो। तब ही वे दया कर रास्ता छोड़ देंगी।' और एक भक्त से उन्होंने कहा था, 'जप-तप द्वारा कर्मपाश कट जाता है; किन्तु भगवान् को प्रेम-भक्ति के बिना नहीं पाया जा सकता। चरवाहों ने कृष्ण को जप-ध्यान कर पाया था या कि 'आओ रे, लो रे, खाओ रे' करके पाया था?'

* * * *

ईश्वर की प्रार्थना कैसे की जाती है - श्रीमाँ अपने अनुभव की बात कर हमें सिखा गयी हैं। श्रीमाँ ने कहा, 'उन दिनों मैं दक्षिणेश्वर में रात तीन बजे उठकर जप में बैठ जातीं। कोई होश न रहता ... क्या दिन थे वे ! चाँदनी रात में चाँद की ओर देखकर हाथ जोड़कर कर कहती, "अपनी चाँदनी के ही समान मेरा अन्तर निर्मल कर दो"।' श्रीमाँ ने कहा है, 'साधना करते-करते देखोगे कि जो मेरे अन्दर है, वही तुममें भी हैं, बागदी डोम में भी वही हैं—तब ही तो मन में दीन-भाव आएगा।'

* * * *

श्रीरामकृष्ण की दृष्टि में श्रीमाँ जिस प्रकार जगदम्बा थीं, उसी प्रकार श्रीमाँ की दृष्टि में श्रीरामकृष्ण थे सर्वदेवदेवीस्वरूप। एक दिन हृदय ने





मज़ाक में श्रीमाँ से कहा, 'मामी, तुम मामा को बाबा (पिता) कहकर बुलाओ ना?' श्रीमाँ ने बिन्दु मात्र लज्जित हुए बिना उत्तर दिया, 'बाबा क्या कहते हो, माता-पिता, बन्धु-बान्धव, आत्मीय-स्वजन सब वे तो हैं।' श्रीमाँ ने आगे कहा, 'ये (ठाकुर) ही तो सब हैं—पुरुष, प्रकृति, इनका ध्यान धरने से ही सब होगा। ठाकुर में ही सब देवी-देवता हैं—यहाँ तक कि शीतला, मनसा भी।'

सब जीवों में वे ठाकुर के दर्शन करतीं। अपनी इस अनुभूति को एक बार उन्होंने अपने सामने जाहिर भी किया था : 'एक बार मेरी ऐसी अवस्था हुई थी कि नैवेद्य से चींटी को भी हटा नहीं पायी, ऐसा लगा मानो ठाकुर ही खा रहे हों।'

उनके ठाकुर सर्वभूतों में विराजमान, सर्वव्यापी थे। श्रीमाँ की दृष्टि में श्रीरामकृष्ण जहाँ एक ओर सर्वदेवेदवीस्वरूप थे, वहीं उपनिषदों में प्रतिपाद्य अद्वैत ब्रह्म भी थे। हिमालय की गोद में स्वामी विवेकानन्द की इच्छा से जिस मायावती आश्रम की स्थापना हुई थी, स्वामीजी चाहते थे कि वहाँ केवल अद्वैत वेदान्त की चर्चा हो, कोई साकार पूजा न हो, यहाँ तक कि श्रीरामकृष्ण की भी पूजा नहीं। आश्रम के एक संन्यासी के मन में स्वामीजी के निर्देश के विषय में द्विधा थी। उन्होंने इस विषय में श्रीमाँ से सलाह ली। श्रीमाँ ने स्वामीजी का समर्थन करते हुए कहा, 'हमारे जो गुरु हैं, वे तो अद्वैत हैं। तुम लोग उसी गुरु के शिष्य हो—तो तुम भी अद्वैतवादी हुए। मैं जोर देकर कह सकती हूँ—तुम अवश्य ही अद्वैतवादी हो।'

जब वे ठाकुर की पूजा करतीं, तो ऐसा लगता कि ठाकुर केवल तस्वीर न होकर जीवन्त हो गये हों। एक महिला-भक्त ने एक दिन दोपहर को ठाकुरघर में जाकर देखा कि श्रीमाँ लज्जावधू की भाँति श्रीरामकृष्ण की तस्वीर को देखकर कह रही थीं, 'आओ, भोजन करने आओ।' फिर गोपाल की मूर्ति के सामने जाकर कह रही हैं, 'आओ

गोपाल, खाने को आओ।' अचानक उक्त महिला-भक्त की नज़र पड़ते ही श्रीमाँ हँसकर बोलीं, 'सभी को भोजन के लिए ले जा रही हूँ।' यह कहकर श्रीमाँ भोग-घर की ओर चल दीं। महिला-भक्त को लगा मानो 'सब ठाकुर (देवतागण) उनके पीछे चल रहे हों।' श्रीमाँ कहा करतीं : सच्चे मन से भोग निवेदित करने पर ठाकुर अवश्य ग्रहण करेंगे।

श्रीमाँ के मतानुसार ठाकुर के जीवन का मूल सुर त्याग था। वे कहतीं, 'त्याग ही उनका आभूषण था। वैसा स्वाभाविक त्याग क्या और किसी ने कभी देखा है?'

* * * *

आमतौर पर श्रीमाँ जब दीक्षा प्रदान करतीं तो कहतीं, 'ठाकुर ही गुरु, ठाकुर ही इष्ट हैं—वे तो केवल माँ हैं। किन्तु कभी-कभी उन्होंने स्पष्टतः या इशारों में यह भी जाहिर किया है कि उनमें और ठाकुर में कोई भेद नहीं। एक संन्यासी-सन्तान ने श्रीमाँ के सम्मुख दुःख प्रकट किया था कि ठाकुर के जगत् में अवतीर्ण होने के बावज़ूद दुर्भाग्यवश वह उन्हें नहीं देख पाया। श्रीमाँ ने फौरन अपने शरीर को दिखलाकर कहा था, 'इसके भीतर वे सूक्ष्मदेह के रूप में हैं। ठाकुर ने स्वयं कहा था, "मैं तुम्हारे भीतर सूक्ष्म देह में रहूँगा।" ' अन्य एक संन्यासी भक्त से श्रीमाँ ने स्पष्ट करते हुए कहा था, 'हम (वे और श्रीरामकृष्ण) क्या जुदा हैं?'

* * * *

जयरामबाटी में श्रीमाँ के मकान के पास ही था बाँणुज्जे-पुकुर (पोखर) और कुछ दूर पर आमोदर नदी। जयरामबाटी के सब लोग बाणुज्जे-पुकुर में स्नान करते और उसी का पानी भी पीते। श्रीमाँ के संन्यासी-सेवक किशोरी महाराज (स्वामी परमेश्वरानन्द) एक दिन आमोदर नदी में स्नान करने गये तो किनारे की बालू को हटाते ही साफ-स्वच्छ

जल देखा। उन्होंने सोचा : यही पानी श्रीमाँ को पिलाएँगे क्योंकि यह जल स्वास्थ्यकर है। अगले दिन जब वे स्नान करने गये तो अपने साथ एक घड़ा लेते गये और स्नान के पश्चात् उस घड़े में श्रीमाँ के लिए पानी लेते आये। सेवक ने सोचा था, श्रीमाँ खुश होंगी किन्तु श्रीमाँ उन्हें बुलाकर डाँटने लगीं, 'किसने तुम्हें पानी लाने के लिए कहा था? मैंने तो पानी लाने के लिए नहीं कहा था। मैं बाँणुज्जे-पुकुर का पानी पीती हूँ, बाँणुज्जे-पुकुर का पानी मीठा है। तुम पानी मत लाना।' किन्तु सेवक ने देखा कि नाराज़ होने के बावज़ूद श्रीमाँ उसी का लाया पानी व्यवहार कर रही हैं। इसलिए अगले दिन भी स्नानकर लौटते समय श्रीमाँ के लिए पानी ले आये। श्रीमाँ इस बार और नाराज़ हुईं और डाँटा, 'तुम पानी क्यों लाते हो? किसने तुम्हें कहा पानी लाने के लिए? मेरे मना करने पर भी तुम बात नहीं सुनोगे?' किन्तु उस दिन श्रीमाँ ने सेवक का लाया हुआ पानी ही पिया। सेवक तीसरे दिन भी जल लाये और श्रीमाँ ने फिर डाँटा। दो दिन सेवक चुप रहा, पर आज श्रीमाँ की डाँट से आहत हो बोला, 'मैं नदी में स्नान करने जाता हूँ, आपके लिए पानी लाऊँगा ही।' श्रीमाँ की सारी नाराज़गी पानी-पानी हो गयी। कोमल स्वर में बोलीं, 'देखो बेटा, तुम पानी लाते हो, मैं तृप्ति के साथ पीती भी हूँ और पानी अच्छा भी है। परन्तु इतनी दूर से पानी लाने में तुम्हे कष्ट होता होगा, इसीलिए तुम्हें मना कर रही थी।' सेवक निरुत्तर हो गया—श्रीमाँ की कठोरता के पीछे उसके लिए कितना उद्वेग एवं कितनी फिक्र काम कर रही थी, यह उसने सोचा भी नहीं था।

* * * *

समाज में जो अवहेलित थे या जो अपने किये अपराधों के कारण लोगों की दृष्टि में हेय थे, श्रीमाँ के स्नेह से वे भी वंचित नहीं होते थे क्योंकि श्रीमाँ तो सिर्फ स्नेह करना जानती थीं, स्नेह के पात्र का गुण-दोष विचार करना नहीं जानती थीं। कथामृतकार श्रीम के छात्र विनोद

बिहारी सोम उन्हीं की मदद से श्रीरामकृष्ण का सान्निध्य व आश्रय-लाभ कर पाये थे। बाद में वे नाटकों से जुड़े और उनका नाम हुआ 'पद्मविनोद'। संग-दोष से उन्हें मद्यपान की लत लग गयी। घनी रात को नशाकर जब वे श्रीमाँ के बागबाज़ारवाले मकान के पास से लौटते तो सारदानन्दजी को 'दोस्त' कहकर पुकारते। किन्तु श्रीमाँ की निद्रा-भंग होने के भय से कोई जवाब नहीं देता। उल्टा-सीधा बकते-बकते पद्मविनोद ने गाना शुरू किया - 'उठो हे करुणामयी, खोलो कुटीर-द्वार, अँधेरे में देख न पाऊँ हृदय काँपे अनिवार।' गाने के साथ-साथ श्रीमाँ की खिड़की के पल्ले खुल गये। यह देख पद्मविनोद आनन्दित हो बोल उठे, 'उठी हो माँ? सुनी है पुत्र की पुकार? उठी हो तो प्रणाम स्वीकार करो।' यह कहकर वे रास्ते पर लोट लगाने लगे। फिर रास्ते की धूल सिर से लगा चलते-चलते गाने लगे—'हृदय में जतन से रखो स्नेहिल श्यामा माँ को, मन तू देख और मैं देखूँ, अन्य कोई न देखे' फिर साथ ही साथ बोल उठे—'मैं देखूँ, दोस्त न देखे।' अगले दिन सुबह श्रीमाँ ने पूछा, 'कौन है वह लड़का' सब सुनकर श्रीमाँ बोलीं, 'देखा, किन्तु होश पूरा है।' सभी ने कहा, 'किन्तु आपका इस प्रकार सोते से उठना ठीक नहीं है।' श्रीमाँ ने कहा, 'उसकी पुकार सुनकर रह नहीं पाती।' कुछ दिनों में पद्मविनोद किसी असाध्य रोग से आक्रान्त हो मृत्यु को प्राप्त हुए। अन्तिम समय उन्होंने 'कथामृत' (वचनामृत) सुनने की इच्छा व्यक्त की और 'रामकृष्ण' नाम का उच्चारण करते-करते अन्तिम साँस ली। सुनकर श्रीमाँ ने कहा था, 'ऐसा ही तो होगा। ठाकुर का बेटा था ! कीचड़ पोत रखी थी, अब जिनका बेटा था उन्हीं की गोद में चला गया।'

* * * *

गाँव की वृद्धा एक माँझी की पत्नी बहुत दिनों बाद श्रीमाँ के पास आई। श्रीमाँ ने पूछा, 'माँझी की बहू, बहुत दिनों से तुम इधर आई क्यों

नहीं?' माँझी-बहू ने बताया कि उसका नौकरी करनेवाला पुत्र मर गया है। सुनकर श्रीमाँ जोर-जोर से रोने लगीं। जिनकी आवाज़ कभी सुनाई नहीं देती उनका इस प्रकार उच्चस्वर में रोना देखकर सेवक-साधु चिन्तित हो बाहर आये और एक अद्भुत दृश्य देखा—दोनों माताएँ ही सन्तान-शोक में रो रही हैं, सन्तान किसकी थी, समझना मुश्किल था। बाद में थोड़ा शान्त होने पर श्रीमाँ ने दरिद्र माँझी-बहू के सिर पर तेल लगाकर फिर मुरमुरे-गुड़ खाने को दिया। जाने के समय कहा, 'फिर आना माँझी-बहू।'

* * * *

श्रीमाँ के मकान में अनेक बिल्लियाँ थीं, जो उनके स्नेह-प्यार से अबाध रूप से अपना वंश-विस्तार कर रही थीं। ज्ञान महाराज ने एक दिन एक बिल्ली को उठाकर पटक दिया। साथ-ही-साथ श्रीमाँ का मुख वेदना से काला हो गया। बाद में उन्होंने ज्ञान महाराज से कहा, 'देखो, ज्ञान, बिल्लियों को मारना नहीं। उनके भीतर भी तो मैं ही हूँ।' इस बात को सुनने के बाद ज्ञान महाराज का बिल्लियों को मारना बन्द हो गया। स्वयं शाकाहारी भोजन करते पर बिल्लियों को रोज चूना मछली तलकर भात के साथ देते। श्रीमाँ के मकान में गंगाराम नामक एक तोता पक्षी था। सुबह-शाम श्रीमाँ उसके पास आकर कहतीं, 'बाबा गंगाराम बोलो तो?' तोता बोल उठता, 'हरे कृष्ण, हरे राम, कृष्ण-कृष्ण, राम-राम।' श्रीमाँ के मुख से सुन-सुनकर ब्रह्मचारियों के नाम बोलना भी गंगाराम ने सीख लिया था। बीच-बीच में पुकार उठता, 'माँ, ओ माँ !' तत्काल श्रीमाँ उत्तर देतीं, 'आई बेटा, आई।' पक्षी का माँ पुकारने का अर्थ होता कि उसे भूख लगी है।

* * * *

जयरामबाटी अँचल का मुसलमान डकैत था - अमजद। श्रीमाँ को

ज्ञात था कि अमजद डकैती करता है। अमजद को भी मालूम था कि उसकी डकैती के बारे में श्रीमाँ जानती हैं। किन्तु श्रीमाँ के प्रति उसकी विशेष भक्ति थी। निःसंकोच वह जब-तब श्रीमाँ के पास हाज़िर हो जाता। उसके आगमन से कोई अप्रसन्न होता तो कोई भयग्रस्त। निर्विकार रहते केवल दो व्यक्ति—श्रीमाँ और अमजद।

एक बार जेल से छूटकर घर लौटकर आते ही अमजद ने देखा कि पेड़ पर खूब लौकियाँ हुई हैं। वैसे ही एक डलिया भर लौकियाँ लेकर वह ज़यरामबाटी में श्रीमाँ के सामने हाज़िर हुआ। श्रीमाँ ने कहा, 'बहुत दिनों से सोच रही थी कि तुम आये क्यों नहीं। कहाँ थे?' बिना संकोच के अमजद ने कहा कि गाय की चोरी के अपराध में पकड़ा गया था, इसलिए वह नहीं आ पाया। श्रीमाँ ने अनसुना करते हुए सहानुभूति के स्वर में कहा, 'इसीलिए तो मैं सोच रही थी कि अमजद आ क्यों नहीं रहा है।'—फिर सस्नेह उससे बातें करने लगीं।

चारों ओर के गाँवों में डकैती करने के बावज़ूद, श्रीमाँ हैं इसलिए जयरामबाटी में वह कभी डकैती नहीं करता। बीच-बीच में वही श्रीमाँ के घर में छोटे-मोटे काम भी कर देता। एक बार श्रीमाँ के घर में वह दीवार तैयार करने का काम कर रहा था। दोपहर में श्रीमाँ ने मकान में अपने कमरे के बरामदे में उसे खाने को दिया, परोस रही थी नलिनी दीदी। अमजद था जात का मुसलमान और नलिनी दीदी स्वभाव से शुद्धता की सनक से ग्रस्त—इसीलिए आँगन में खड़ी हो दूर से फेंक-फेंककर परोस रहीं थीं। यह देखकर श्रीमाँ बोल उठीं, 'ऐसे देने से मनुष्य को खाकर क्या तृप्ति मिलेगी? तू न दे सके, तो मैं देती हूँ।' खाना खाने के बाद जूठी पत्तल अमजद खुद ही उठाकर ले गया किन्तु जहाँ उसने बैठकर खाया था, उस स्थान को श्रीमाँ ने स्वयं अपने हाथों से साफ किया। नलिनी दीदी कह उठीं, 'अरे बुआ, तुम्हारी तो जात गयी।' श्रीमाँ ने उत्तर दिया, 'जैसे सरत् (स्वामी सारदानन्दजी) मेरा बेटा

है, वैसे ही अमजद भी मेरा ही बेटा है।'

श्रीमाँ एक बार जयरामबाटी में बुखार में बिस्तर पर पड़ी थीं। अनेक लोग आकर उन्हें देखकर जा रहे थे। एक दिन सुबह नौ-दस बजे सेवक ब्रह्मचारी ने देखा, एक क्षीणकाय व्यक्ति ने फटे कपड़ों में लाठी पर टेक देकर मकान के भीतर प्रवेश किया। जिस प्रकार नि:संकोच रूप से उसने मकान में प्रवेश किया उससे समझ में आ रहा था कि श्रीमाँ के पास उसका आना-जाना है। जानने के आग्रह से ब्रह्मचारी उसके पीछे हो लिये। श्रीमाँ कमरे के बीच बिस्तर पर लेटी थीं। उस घर के दरवाजे के सामने बरामदे का कुछ हिस्सा चटाई से घिरा था, अत: आँगन में श्रीमाँ नज़र नहीं आ रही थीं। ब्रह्मचारी ने भीतर जाकर देखा कि वह व्यक्ति उचककर चटाई के ऊपर से श्रीमाँ को ढूँढ़ रहा था। अचानक श्रीमाँ की नज़र उस ओर गयी तो क्षीण-कण्ठ से सस्नेह उन्होंने कहा, 'कौन बेटा, अमजद? आओ।' प्रफुल्ल चित्त अमजद बरामदे में गया और दरवाजे के पास बैठकर मुँह भीतर बढ़ाकर श्रीमाँ से बातें करने लगा। माँ-बेटे के बीच सुख-दु:ख की बातें होती देख सेवक ब्रह्मचारी अपने काम पर चले गये। दोपहर में अमजद ने वहीं खाना खाया और शायद थोड़ा आराम भी कर लिया। शाम को जब वह घर लौट रहा था तो ब्रह्मचारी ने देखा : अमजद का चेहरा सम्पूर्ण रूप से अलग था। उसने स्नान किया था, शरीर और सिर पर तेल लगाया था—वह रूखा और मलिन चेहरा नहीं था। भरपेट भोजन कर पान चबाता-चवाता वह चल रहा था—मुख पर थी तृप्ति की मुस्कान और देखा, उसकी पोटली में थीं नाना वस्तुएँ तथा हाथ में कविराज तेल की शीशी। सब श्रीमाँ ने ही उसे दिया था। बाद में श्रीमाँ ने ब्रह्मचारी से कहा, 'गरम दवाएँ खाकर अमजद का माथा गरम हो गया है, रात में नींद नहीं आती। बहुत दिनों से घर में एक शीशी नारायण तेल की पड़ी थी, उसे दे दी है—लगाएगा तो माथा ठण्डा रहेगा, बहुत अच्छा तेल है।'

श्रीमाँ के देहत्याग के पश्चात् डकैती करने जाकर अमजद तलवार की चोट से घायल हो गया था, बाद में घाव हो गया और उसकी मृत्यु हो गयी।

* * * *

उद्बोधन में एक बार नीचे खूब शोरगुल हो रहा था जिसमें गोलाप-माँ श्रीमाँ से शिकायत कर रही थीं, 'तुम्हारा लड़कों के ऊपर कोई नियन्त्रण नहीं है। परमहंस महाशय लड़कों पर कितना नियन्त्रण रखते थे। कोई जरा-सा भी इधर से उधर नहीं हो सकता था।' श्रीमाँ बोलीं, 'क्या पता, मुझे किसी में दोष ही नज़र नहीं आता तो मैं नियन्त्रण क्या रखूँ? मैं माँ हूँ ! मैं किसी को सज़ा कैसे दूँ? मैं झाड़-झूड़कर साफ कर देती हूँ। ये ठाकुर के लड़के हैं, इन पर डाँट-डपट मैं कर सकती हूँ, भला? वे कैसे सबकुछ ठीक-ठाक कर लेते हैं। उनके आत्मविस्मृत स्नेह से सब सीधे हो जाते हैं। हमारे प्रेममय ठाकुर, उनमें कोई कठोर या रूढ़ भाव नहीं है। जब लोग कह देते हैं, "अच्छा, इसका फल भगवान् देंगे"—तो मैं ठाकुर से प्रार्थना करती हूँ—"ठाकुर ! सदा सभी का मंगल करना।" मैं लड़कों से कहती हूँ—किसी से ईर्ष्या मत करो, भगवान् से न्याय करने को मत कहो, बल्कि अत्याचारी का भी मंगल हो उसके लिए ऐसी प्रार्थना करो। भगवान का न्याय तराजू में तौला होता है, रत्तीमात्र भी इधर-उधर नहीं हो सकता। किन्तु उसके देने का भी तो अन्त नहीं है।'

* * * *

भगवान् या भगवती जब मानवदेह में अवतीर्ण होते हैं तो अपने देवभाव को यथासम्भव छिपाकर रखते हैं क्योंकि देवभाव अधिक उजागर होने से मनुष्य उनके प्रति श्रद्धा तो करेगा, उन्हें अपना नहीं लेगा और ऐसा होने पर जगत्-कल्याण के जिस कार्य के लिए उनका

आगमन हुआ है वह बाधित होगा। श्रीमाँ भी अपना देवीत्व यथासम्भव जाहिर न होने देतीं। फिर भी अनजाने में ही कभी-कभी उनका स्वरूप अभिव्यक्त हो जाता और कभी भक्त की मनोकामना पूर्ण करने के लिए स्वयं ही अपने देवीरूप में प्रकट होतीं।

श्रीरामकृष्ण के भतीजे शिबूदादा श्रीमाँ के अनुगामी थे। ठाकुर के देहावसान के बाद एक बार श्रीमाँ कामारपुकुर से जयरामबाटी आ रही थीं, शिबूदादा साथ में थे। जयरामबाटी के नज़दीक मैदान के बीच आकर शिबूदादा के मन में अचानक जाने क्या हुआ कि वे खड़े हो गये। श्रीमाँ ने कहा, 'यह क्या रे शिबू, आगे आ।' शिबूदादा ने कहा, 'पहले एक बात का उत्तर दो तब आऊँगा आगे।' श्रीमाँ ने कहा, 'कौन-सी बात?' शिबूदादा, 'बता सकती हो, तुम कौन हो ?' श्रीमाँ बोलीं, 'मैं? मैं तेरी चाची हूँ।' शिबूदादा बोले, 'तो फिर जाओ, घर के पास तो आ ही गयी हो। पर मैं और आगे नहीं आऊँगा।' शाम होती देख उद्विग्न हो श्रीमाँ ने कहा, 'देखो तो भला, मैं और कौन हूँ? मैं मनुष्य हूँ, तेरी चाची।' शिबूदादा ने भेदभरा जवाब दिया, 'तो ठीक है, तुम चली जाओ न।' शिबूदादा को नहीं आते देख अन्ततः श्रीमाँ ने कहा, 'लोगा काली कहते हैं।' शिबूदादा बोले, 'काली तो? ठीक?' श्रीमां ने उत्तर दिया, 'हाँ।' शिबूदादा खुशी-खुशी बोले, 'तो चलो।'

* * * *

एक किशोर भक्त जयरामबाटी में श्रीमाँ की पदसेवा कर रहा था। श्रीमाँ खटिया पर बैठी थीं, सन्तान फर्श पर। श्रीमाँ के दोनों पैर देखते-देखते उसके मन में विचार आया : इस प्रकार उभरी नस और सिकुड़े चमड़ेवाला पैर है और ये ही - जगज्जननी, आदिशक्ति हैं। सोचते-सोचते ही उसने देखा कि उसके हाथों में उस वृद्धा के पैर अब नहीं थे और उनकी जगह एक जोड़ा सुडौल, गौरवर्ण और सुकोमल पैर थे। अवाक् होकर श्रीमाँ के मुख की ओर जब नज़र उठाई तो देखा : दसों

दिशाओं को आलोकित करती नाना रत्नों से जड़े मुकुट को पहने बैठी हैं त्रिनयना जगद्धात्री। उस दिव्य स्वरूप की छटा वह सह नहीं पाया और मूर्छित हो गया। जब होश आया तो देखा : श्रीमाँ अपने परिचित स्वरूप में उसके बदन और सिर को सहला रही थीं।

*   *   *   *

जयरामबाटी में एक दिन आत्मियाओं ने श्रीमाँ को परेशान किया तो श्रीमाँ ने कहा, 'तुम लोग मुझे अधिक परेशान मत करो। इसके (देह के) भीतर जो हैं, वे यदि एक बार फुफकार उठें, तो ब्रह्मा, विष्णु, महेश किसी के लिए भी तुम लोगों की रक्षा कर पाना सम्भव नहीं होगा।'

एक दिन श्रीमाँ उद्बोधन में ठाकुर-पूजा कर रही थीं और पगली-मामी बड़बड़ाकर श्रीमाँ को गाली दिये जा रही थी। पूजा समाप्त होने पर पगली को ओर देखकर श्रीमाँ ने अपने ख्याल में ही कहा, 'कितने ऋषि-मुनि तपस्या करके भी मुझे नहीं पाते और तुम लोग हो कि मुझे पा कर भी खो दिया।'

*   *   *   *

एक दिन सुबह श्रीमाँ बरामदे में झाड़ू दे रही थीं और एक साधु बरामदे की दूसरी ओर बैठे मुरमुरे खा रहे थे। ऐसे समय दरवाजे पर भिखारी की आवाज़ आयी : 'माँ, कुछ भिक्षा मिल जाए !' श्रीमाँ अपने ही ख्याल में कह उठीं, 'मैं अपने अनन्त हाथों से भी काम समाप्त नहीं कर पा रही हूँ।' श्रीमाँ की आवाज़ तब इतनी कोमल और मधुर सुनाई दी कि उस स्वर से आकर्षित हो साधु ने श्रीमाँ की ओर देखा। श्रीमाँ ने हंसकर कहा, 'देखो तो, मेरे दो हाथ हैं और मैं कह रही हूँ कि मेरे अनन्त हाथ हैं।'

*   *   *   *

नाते-रिश्तेदारों को लेकर श्रीमाँ भी उन्हीं की तरह गृहस्थी चलाती हैं, यह देखकर बहुतों के मन में संशय होता कि श्रीमाँ उनसे भिन्न कहाँ हैं? कोई-कोई तो खुलकर कह भी देता, माँ, देखते हैं, आपमें आसक्ति बड़ी भारी है। तब श्रीमाँ कहतीं, हम स्त्रियाँ हैं न, हममें ऐसा ही होता है। किन्तु एक भक्त के बार-बार यह प्रश्न करने पर श्रीमाँ ने एक दिन कहा था, 'मेरे जैसी दूसरी कहीं हो तो दिखाओ? जानते हो, जो परमार्थ के बारे में बहुत ज्यादा सोचते हैं, उनका मन खूब सूक्ष्म-शुद्ध हो जाता है। इसीलिए मन जो पकड़ता है, खूब कसकर पकड़ता है। इसलिए आसक्ति जैसा लगता है। बिजली जब चमकती है तो खिड़की पर लगती है, खड़खड़ी पर नहीं लगती।'

* * * *

किन्तु स्वभावत: श्रीमाँ स्वयं को गोपन ही रखतीं। श्रीमाँ की अन्तिम बीमारी के समय जब एक वरिष्ठ महिला भक्त ने श्रीमाँ से 'तुम जगदम्बा हो, तुम ही सब हो' - इत्यादि कहकर प्रशंसा की तो श्रीमाँ ने रुखाई से कहा, 'जाओ, जाओ 'जगदम्बा' ! अरे उन्होंने दया करके चरणों में आश्रय दिया था तो जी पाई। 'तुम जगदम्बा ! तुम ये ! तुम वो ! निकलो यहाँ से।' भक्त के आन्तरिक विश्वास पर चोट न पहुँचाना चाहते हुए भी इस प्रकार की प्रशंसा वे सहन न कर पातीं। नलिनी दीदी ने एक बार श्रीमाँ से प्रश्न किया था कि लोग कहते हैं कि श्रीमाँ अन्तर्यामिनी हैं, क्या यह सही है? श्रीमाँ ने उत्तर दिया था, 'वे तो भक्ति में ऐसा कहते हैं। मैं क्या जगदम्बा हूँ? ठाकुर ही सब हैं। तुम लोग ठाकुर से कहो - मुझमें 'मैं-भाव' न आने पाए।'

* * * *

देवत्व और मनुष्यत्व के सम्मिश्रण से श्रीमाँ का एक अद्भुत व्यक्तित्व था—वह व्यक्तित्व मुग्ध करता, शान्ति का प्रलेपन करता,

किन्तु उसके सामने चपलता जाहिर नहीं हो पाती। उद्‌बोधन के कर्मचारी चन्द्रमोहन दत्त श्रीमाँ के लिए सौदा ला देते थे तथा और भी कई काम कर देते। इसके लिए उन्हें अक्सर श्रीमाँ के पास जाना पड़ता। श्रीमाँ उन्हें खूब स्नेह करतीं। एक दिन स्वामी विशुद्धानन्जी के साथ जब वे गंगास्नान को जा रहे थे, शुद्धानन्दजी ने मज़ाक में उनसे कहा, 'चन्द्र, तुम तो श्रीमाँ के पास जाकर प्रसाद खाते हो; मैं एक बात कहूँ — तुम श्रीमाँ से कह सकोगे?' चन्द्रबाबू ने कहा, 'क्यों नहीं कह सकूँगा?' शुद्धानन्दजी बोले, 'तुम श्रीमाँ से कह सकते हो—"माँ, मुझे मुक्ति चाहिए?"' चन्द्रबाबू ने कहा, 'आप लोग तनिक रुकें, मैं अभी आता हूँ।' चन्द्रबाबू श्रीमाँ के कमरे की ओर चले। ऊपर जाकर देखा, श्रीमाँ पूजा में बैठी हैं। इस कमरे में वे कितनी ही बार आते-जाते हैं, परन्तु आज कमरे में पैर रखते ही उन्हें कैसा डर-सा लगा। धीरे-धीरे उन्होंने कमरे में प्रवेश किया किन्तु न जाने क्यों उनका शरीर काँपने लगा। थोड़ी देर बाद श्रीमाँ ने उनकी ओर देखकर आने का कारण पूछा। चन्द्रबाबू की छाती धड़क रही थी, किसी ने मानो गला दबा रखा हो। वे सब भूल गये और आदत के अनुसार कह दिया : 'प्रसाद चाहिये'। श्रीमाँ ने तख्तपोश के नीचे रखे प्रसाद की ओर इंगित कर दिया और फिर पूजा करने लगीं। चन्द्रबाबू प्रसाद लेकर नीचे चले आये। उनकी कँपकँपी को थमने में एक घण्टा लगा था।

* * * *

शास्त्रों में है कि आध्यात्मिक जगत् के महापुरुषों का आचरण कभी प्राज्ञ के समान तो कभी बालक के समान होता है—साधारण मनुष्य साधारण दृष्टि में उसकी व्याख्या नहीं ढूँढ़ पाता। श्रीमाँ में भी कभी-कभी बालिका-सुलभ व्यवहार नज़र आता। वे लालटेन इस्तेमाल करतीं पर चिमनी खोलकर साफ नहीं कर पातीं। कहतीं : 'उसमें बड़े कल-पुर्जे रहते हैं, मैं खोल नहीं पाती।' कोलकाता की एक लड़की की बुद्धि

की प्रशंसा करते हुए कहतीं : 'उसे घड़ी में चाबी देना आता है।'

राममय महाराज (स्वामी गौरीश्वरानन्द) उस समय स्कूल के छात्र थे। जयरामबाटी के पास ही उनका घर था। सप्ताहान्त में श्रीमाँ के पास जाकर रहते और नाना कामों में उनकी सहायता करते। एक दिन बहुत से भक्त आये थे और श्रीमाँ उनके लिये रोटियाँ बेल रही थीं। राममय महाराज ने आटा गूँथ दिया था। वे और श्रीमाँ रोटी बेल रहे थे, नलिनी दीदी रोटियाँ सेंक रही थीं। अचानक नलिनी दीदी कह उठीं, 'बुआ, तुम्हारी रोटियों से राममय की रोटियाँ अच्छी फूल रही हैं।' कहने के साथ ही साथ छोटी लड़की की तरह नाराज़ हो श्रीमाँ ने चकला-बेलन सरका दिया और बोलीं, 'मैं रोटी बेलते-बेलते बूढ़ी हो गई। और राममय, जो दुधमुँहा बच्चा है, गला दबाते ही जिसके मुँह से दूध निकल आएगा—वह मुझसे अच्छी रोटियाँ बेल रहा है। मैं अब नहीं बेलूँगी। वही बेले।' बड़ी मुश्किल हो गयी। राममय महाराज ने भी चकला-बेलन सरका दिया और बोले, 'आप अगर नहीं बेलेंगी तो मैं भी नहीं बेलूँगा।' राममय महाराज ने नलिनी दीदी से कहा, 'दोनों एक साथ दे रहे हैं, तुमने कैसे पहचाना कौन-सी रोटी बुआ की है और कौन-सी मेरी? श्रीमाँ से अच्छी रोटी मैं कभी बेल सकता हूँ? तुम निरर्थक तुलना क्यों कर रही हो?' श्रीमाँ तब खुश होकर पुनः रोटियाँ बेलने में जुट गयीं।

* * * *

जयरामबाटी आश्रम में एक बार परवल के कई पौधे लगाये गये। पौधे बड़े हुए तो उनमें फल अच्छे हुए किन्तु घर की स्त्रियों में से किसी ने कहा, माँ, यह तो बड़े अमंगल की बात है, परवल तोड़ेगा कौन? क्योंकि (बांग्ला में) 'पटलतोला' अर्थात् परवल तोड़ने का अर्थ ही होता है - मृत्यु। जो संन्यासी बगीचा देखता था, श्रीमाँ ने फौरन उससे कहा सारे परवल के पौधे उखाड़ फेंको। श्रीमाँ को तब समझाया गया :

बाज़ार में तो कितने परवल आते हैं। ऐसा तो सुनने में नहीं आता कि जिन्होंने पौधों से परवल तोड़े वे सबके सब मर ही गये हों। बहुत समझाया गया तब जाकर श्रीमाँ राजी हुईं कि पौधे नष्ट न किये जाएँ।

* * * *

श्रीमाँ जब पहली बार कोलकाता आईं तो स्नान-घर में घुसकर नल खोलते ही नल के भीतर से हवा की 'फोंस-फोंस' आवाज़ होने लगी। श्रीमाँ दौड़कर बाहर चली आईं और सबसे कहती रहीं कि नल के भीतर साँप घुसा हुआ है। सुनकर सब हँस दिये, क्योंकि कोलकाता के लोग तो जानते ही थे कि नल के भीतर हवा अटकी रहती है इसलिए पानी आने के समय वैसी आवाज़ आती है। किन्तु श्रीमाँ बिल्कुल भी लज्जित नहीं हुईं। उन्हें जब कारण पता चला तो सबके साथ वे भी हँसने लगीं। बाद में स्वयं ही यह बात भक्तों को बतलाकर वे प्रसन्न होतीं।

* * * *

श्रीरामकृष्ण के देहावसान के कुछ बाद की बात है। श्रीमाँ उन दिनों कामारपुकुर में थीं। ठाकुर का एक भक्त हरीश पत्नी द्वारा दी गयी दवा के द्वारा पागल हो गया था। वह कामारपुकुर में चला आया। एक दिन श्रीमाँ बगल के मकान से आ रही थीं। जैसे ही घर में घुसीं, वैसे ही हरीश श्रीमाँ के पीछे दौड़ा। मकान में और कोई था नहीं, अब श्रीमाँ क्या करें? वे धान के खलिहान के चारों ओर घूमने लगीं। हरीश श्रीमाँ का पीछा छोड़ नहीं रहा था। सात चक्कर लगाने के बाद श्रीमाँ रुक गयीं। हरीश को धरती पर पटक, सीने को घुटने से दबा, जीभ को खींच, गाल पर ऐसा चाँटा मारा कि हरीश 'हें-हें' कर हाँफने लगा। छोड़ते ही वह भाग खड़ा हुआ। श्रीमाँ के हाथ भी लाल हो गये।

यों श्रीमाँ कोमलता की प्रतीक थीं। कभी जोर से बोलती तक नहीं थीं। किन्तु प्रयोजन होने पर वे दृढ़ और कठोर भी हो सकती थीं।

उनका तेजोमय स्वरूप देखकर लोग अवाक् हो जाते। बागबाज़ार में श्रीमाँ के घर के सामने कई अशिक्षित व गरीब लोगों का वास था। एक दिन सुनाई दिया एक महिला रो रही थी। उसके पति ने उसे मारा-पीटा था। महिला का रोना सुनकर पहली मँजिल के बरामदे से तेज आवाज़ में श्रीमाँ चिल्ला उठीं, 'अरे, पत्नी को मार ही डालेगा क्या?' श्रीमाँ को चीखते देख सभी अवाक् हो गये। उस व्यक्ति ने भी श्रीमाँ की उग्रमूर्ति देखते ही सिर झुका लिया और प्रहार बन्द कर दिया।

बाँकुड़ा जिला के यूथबिहारी ग्राम के देवेनबाबू की पत्नी और बहन दोनों का नाम सिंधुबाला था। क्रान्तिकारी कामों में लिप्त होने के सन्देह में पुलिस ने पहले भूल से बहन को गिरफ्तार कर लिया। वे गर्भवती थीं। बाद में देवेनबाबू की स्त्री को भी गिरफ्तार कर दोनों को पैदल चलाकर गाँव के रास्ते से थाने ले चले। गाँववालों ने उनकी भूल बतायी फिर भी उन्होंने कुछ सुना नहीं। कानों-कान यह खबर जयरामबाटी में श्रीमाँ तक भी पहुँची। श्रीमाँ पहले तो सिहर उठीं और बोलीं, क्या कह रहे हो? फिर अग्निमूर्ति हो कहने लगीं, 'यह क्या कम्पनी का आदेश है या पुलिस साहब की करामात? निरपराध स्त्रियों पर ऐसा अत्याचार तो महारानी विक्टोरिया के समय भी नहीं सुना था ! यदि यह कम्पनी का आदेश है तो और अधिक दिन नहीं। अच्छा, ऐसा कोई मर्द क्या वहाँ नहीं था जो दो तमाचे जड़कर दोनों लड़कियों को छुड़ा लेता?' कुछ देर बाद खबर आई कि दोनों महिलाओं को पुलिस ने छोड़ दिया है। तब श्रीमाँ कुछ शान्त होकर बोलीं, 'यह खबर यदि न मिलती तो आज रात को सो न पाती।'

* * * *

देश और समाज के चारों ओर की परिस्थितियों के बारे में श्रीमाँ परिचित थीं। उनके भीतर जैसे एक स्वाभाविक देशप्रेम तथा स्वाधीनता की अकुलाहट थी, वैसे ही इस सम्बन्ध में उनका निजी दृष्टिकोण भी था।

जयरामबाटी की धरती को प्रणाम कर वे कहतीं, 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।' श्रीमाँ उन दिनों कोआलपाड़ा आश्रम में थीं। बदनगंज उच्च विद्यालय के प्रधान शिक्षक भक्त प्रबोधचन्द्र चट्टोपाध्याय को बातों ही बातों में श्रीमाँ ने कहा, 'देखो न, रासबिहारी कल कोलकाता से रवाना होकर आज पहुँच गया। हम उन दिनों कितना पैदल चलकर, कितना कष्ट उठाकर दक्षिणेश्वर पहुँचा करते थे।' श्रीमाँ की बातों से उत्साहित होकर प्रबोधबाबू बोले, 'अंग्रेज सरकार ने हमारे देश में सुख-सुविधाओं में काफी वृद्धि की है।' तत्काल श्रीमाँ ने कहा, 'किन्तु उन सारी सुविधाओं के बावज़ूद हमारे देश में अन्न-वस्त्र के अभाव में काफी वृद्धि हुई है। पहले इतना अन्न-कष्ट नहीं था।'

* * * *

प्रथम विश्वयुद्ध (१९१४-१८) के दौरान अन्न-वस्त्र का संकट तीव्र हो उठा। गरीब स्त्रियाँ अपनी लाज छिपाने को न्यूनतम वस्त्र नहीं जुटा पा रही थीं। वस्त्राभाव में स्त्रियाँ आत्महत्या कर रही हैं सुनकर श्रीमाँ अत्यन्त अधीर हो कह उठी थीं, 'वे कब यहाँ से जाएँगे, कब जाएँगे?' फिर शान्त हो कहने लगीं, 'तब घर-घर में चरखा था, खेतों में कपास की खेती होती, सभी सूत कातते, अपने कपड़े खुद ही बना लेते, कपड़े का अभाव नहीं था। कम्पनी ने आकर सब नष्ट कर दिया। कम्पनी ने फायदा दिखा दिया—एक रुपये में चार धोतियाँ, एक ऊपर से मुफ्त। सब बाबू हो गये, चरखा का चलन उठ गया। अब सारे बाबू काबू में आ गये हैं।' कोआलपाड़ा आश्रम में ताँत और चरखे का काम देखकर श्रीमाँ ने कहा था, 'मुझे भी एक चरखा ला दो, मैं भी सूत कातूँ।'

* * * *

स्वदेशी आन्दोलन के नेता और कार्यकर्ता अधिकांशतः स्वामी

विवेकानन्द की वाणी और आदर्श से अनुप्राणित थे। विवेकानन्द की अनुपस्थिति में परोक्ष रूप से श्रीमाँ से उन्हें प्रेरणा मिलती। कारागार से छूटकर वे समूहों में आते और श्रीमाँ को प्रणाम कर जाते। उन्हें देखकर श्रीमाँ ने कहा, 'लड़के कितने निर्भीक हैं ! देश में क्या परिवर्तन आया है ! सभी कह रहे हैं कि वे स्वामीजी के शिष्य हैं।'

विख्यात क्रान्तिकारी यतीन्द्रनाथ मुखर्जी या बाघा नियमित रूप से श्रीमाँ के पास आते-जाते और उनका आशीर्वाद प्राप्त करते। बाघा जतीन के घनिष्ठ सहकर्मी पंचानन चक्रवर्ती ने बताया था, 'फरवरी के दिनों में महानायक यतीन्द्रनाथ ने सन् १९१५ में बागनान से बालेश्वर यात्रा के समय स्टेशन पर सुना कि श्रीमाँ सारदादेवी भी उसी ट्रेन से कहीं जा रही हैं। सारी जोखिम की अवहेलना करते हुए वे दौड़े-दौड़े आये और उनका आशीर्वाद लेकर गये।' बाघा यतीन की मृत्यु १० सितम्बर १९१८ को हुई थी। सम्भवत: श्रीमाँ के साथ यही उनकी आखिरी भेंट थी।

सन् १९१६ में पश्चिम बंगाल के पूर्वमुख्यमन्त्री और गाँधीवादी नेता डॉ. प्रफुल्लचन्द्र घोष ने भी श्रीमाँ के दर्शन किये। इस बारे में उन्होंने कहा है, "मेरा यह परम सौभाग्य था कि उस दिन श्रीमाँ ने मेरे सिर पर हाथ रखकर मुझे आशीर्वाद दिया था। उस दिन की स्मृति मेरे जीवन की अक्षय सम्पदा है। जीवन में मैंने जब भी किसी कठिन समस्या का सामना किया है, या अब भी करता हूँ तो उसी क्षण को याद करता हूँ जब मैंने श्रीमाँ के चरणों में मस्तक रखकर प्रणाम किया था और जब उन्होंने मेरे सिर पर हाथ रखकर मुझे आशीर्वाद प्रदान किया था।

*   *   *   *

तत्कालीन महिला-क्रान्तिकारियों के लिए भी श्रीमाँ साक्षात् आत्ममर्यादास्वरूपा थीं। श्रीमाँ के जीवन से परोक्ष रूप से उन्हें शक्ति

मिलती है। भारत-जर्मन षडयन्त्र से जुड़ी ननीबालादेवी को सन् १९१७ में पेशावर से बन्दी बनाकर काशी लाया गया। उन पर अकथ्य अत्याचार किये गये, फिर भी कोई स्वीकारोक्ति सम्भव नहीं हुई तो उन्हें अंग्रेज सरकार ने कोलकाता के प्रेसीडेंसी जेल में स्थानान्तरित कर दिया। ननीबालादेवी ने वहाँ भूख हड़ताल कर दी। पुलिस अधिकारियों के अनुरोध से भी कुछ नहीं हुआ। गुप्तचर पुलिस के विशेष सुपरिन्टेण्डेण्ट गोल्डी ने आश्वासन दिया कि आहार करने पर उनकी कोई भी इच्छा पूरी करने को वे राजी हैं तो ननीबालोदेवी ने कहा, 'मुझे बागबाज़ार में रामकृष्ण परमहंसदेव की पत्नी के पास रहने दें, तो खाऊँगी।' गोल्डी ने कहा, 'आप दरख़ास्त लिख दें।' ननीबालादेवी ने तत्क्षण दरख़ास्त लिख दी। गोल्डी ने उसे लेकर फाड़ डाला और गोला बनाकर रद्दी कागज़ों की टोकरी में डाल दिया। ननीबालादेवी ने आहत सिंहनी के समान गोल्डी के मुँह पर कसकर तमाचा जड़ दिया।

* * * *

देशभक्ति के नाम पर अनर्थक आवेग उन्हें (श्रीमाँ को) पसन्द नहीं था। किसी एक भक्त से उन्होंने कहा था, 'देखो, वन्देमातरम् करके तुम कोई आवेगजनित आन्दोलन मत करना। ताँत बनाओ, कपड़े तैयार करो। मेरी इच्छा होती है कि एक चरखा मिले तो मैं भी सूत कातूँ। ... केवल स्वदेशी करके क्या होगा ! हमारा जो कुछ भी है सबके मूल हैं ठाकुर, वही आदर्श हैं। चाहे जो करो, उन्हें पकड़े रहोगे तो कोई ताल-बेताल नहीं होगा।' इसके जवाब में कोआलपाड़ा मठ के अध्यक्ष स्वामी केशवानन्द ने कहा था, 'माँ, स्वामीजी ने देश का काम करने के लिए कितना कहा है एवं देश के युवकों को निष्काम कर्म की ओर प्रेरित किया है। आज यदि वे जीवित होते तो देश का कितना काम होता !' यह सुनकर श्रीमाँ ने कहा, 'अरे बाबा ! यदि मेरा नरेन आज होता तो कम्पनी (अंग्रेज सरकार) क्या आज उसे छोड़ देती? जेल में बन्द

रखती। मैं ऐसा न देख पाती। नरेन तो मानो म्यान से निकली खुली तलवार था।

* * * *

स्वाधीनता की कामना उन्हें कभी मातृत्व की परिधि लाँघने नहीं देती थी। मातृरूप में वे अंग्रेज और भारतीयों के द्वन्द्व के ऊपर रहीं। एक बार एक क्रान्तिकारी सन्तान ने श्रीमाँ को अंग्रेजों के अत्याचार का वर्णन करते हुए कातर स्वर में कहा, 'माँ, तुम एक बार अपने मुख से कह दो, "अंग्रेजों का नाश हो" '; श्रीमाँ ने तत्काल कहा, 'माँ होकर मैं मनुष्य के नाश की बात कैसे कहूँ, अंग्रेज क्या मेरी सन्तान नहीं हैं? मैं तो कहती हूँ, सभी का कल्याण हो।'

* * * *

देशसेवा में जो जीवन-उत्सर्ग करना चाहते हैं उनके लिए श्रीमाँ का महामूल्यवान निर्देश है, 'केवल समाजसेवा और देशसेवा से सारा जीवन देह-मन को शुद्ध रखना कठिन है। गुरु के प्रति प्रेम एवं इष्ट का भजन करके कुमार या कुमारी रहना सहज है। स्त्री-पुरुष जो भी अविवाहित्त होगा उसे ईश्वर को पकड़कर चलना होगा, उसे भूलने से ही नाना प्रकार की गड़बड़ियाँ होती हैं।'

* * * *

स्त्रियाँ शिक्षित हों—यह श्रीमाँ बहुत चाहती थीं। विद्या के प्रति उनका गहरा अनुराग था। निवेदिता के स्कूल का उद्‌घाटन श्रीमाँ ने ही (१३ अक्तूबर को १८९८ को) किया था और आशीर्वाद देते हुए कहा था, 'मैं प्रार्थना करती हूँ कि इस विद्यालय पर जगन्माता का आशीर्वाद वर्षित हो एवं यहाँ से शिक्षा प्राप्त लड़कियाँ आदर्श बालिकाएँ बनें।' इस स्कूल के प्रति हमेशा श्रीमाँ की स्नेह दृष्टि रही।

एक महिला-भक्त अपनी पुत्रियों का विवाह नहीं कर पा रही थीं।

इस बारे में जब उसने दुश्चिन्ता व्यक्त की तो श्रीमाँ ने कहा था, 'विवाह नहीं कर पा रही हो तो इतनी चिन्ता किस बात की? निवेदिता के स्कूल में रख दो—लिखना-पढ़ना सीखेगी, ठीक रहेगी।' मद्रास की दो लड़कियाँ निवेदिता के विद्यालय में थीं, उनकी उम्र थी बीस-बाईस वर्ष। उनके बारे में उल्लेखकर श्रीमाँ ने कहा था, 'आहा ! उन्होंने कितना सुन्दर कामकाज सीखा है। और यहाँ ! यहाँ के लोग आठ-नौ वर्ष की उम्र होते न होते कहने लगते हैं—परगोत्र कर दो। आहा ! राधू का यदि विवाह न हुआ होता तो क्या ऐसी दुःख-दुर्दशा होती?'

एक दिन राधू सामने के मिशनरी स्कूल में जाने के लिए खा-पीकर, कपड़े पहनकर तैयार हो गयी थी, ऐसे में गोलाप-माँ ने आकर श्रीमाँ से कहा, 'लड़की बड़ी हो गयी है, अब स्कूल में जाकर क्या है?' यह कहकर राधू को स्कूल जाने से मना कर दिया। राधू रोने लगी। इसी समय श्रीमाँ ने कहा, 'ऐसी क्या बड़ी हो गयी है, जाये ना। लिखना-पढ़ना, शिल्प ये सब सीखेगी तो कितना फायदा होगा। जिस गाँव में विवाह हुआ है—यह सब जानकर वह अपना तथा औरों का कितना उपकार कर पाएगी, क्या कहती हो?' श्रीमाँ की बात पर राधू स्कूल चली गयी।

* * * *

भारतीय नारियों के जागरण के काम में स्वामी विवेकानन्द भगिनी निवेदिता को लेकर आये। किन्तु उस समय के दकियानूस समाज में एक यूरोपियन महिला को प्रवेशाधिकार की स्वीकृति कौन दे? यह स्नेह-स्वीकृति श्रीमाँ ने दी। इसीलिए स्वामीजी ने निवेदिता को श्रीमाँ के पास भेजा था। श्रीमाँ ने उन्हें न केवल ग्रहण ही किया, अपितु उनके साथ बैठकर खाया भी। श्रीमाँ की उदारता देखकर स्वामीजी ने भी विस्मय और उल्लास से गुरुभाई स्वामी रामकृष्णानन्दजी को लिखा था : 'सोच सकते हो—श्रीमाँ ने उनके साथ खाया भी ! है न विलक्षण

बात?' ज्ञात रहे यह घटना उस युग में घटी थी जिस युग में बागबाज़ार की पंकजिनी बंद्योपाध्याय को निवेदिता को मछली के काँटे निकालकर देने और साड़ी पहनाने के लिए 'गंगास्नान' नामक दण्ड भुगतना पड़ा था।

* * * *

निवेदिता से श्रीमाँ अत्यन्त स्नेह करतीं। भारत सम्बन्धी उनके हर काम के सम्यक् महत्व को वे समझतीं। मुसलमान छात्रों ने एक बार निवेदिता को 'एशिया में इस्लाम' विषय पर बोलने को आमन्त्रित किया। श्रीमाँ को जब यह बात बताई तो वे इतना खुश हुईं कि निवेदिता अवाक् रह गयीं। लाल-किनार की साड़ी पहने श्रीमाँ की जो सौम्य मूर्ति की छवि आज घर-घर में दिखाई देती है, वह तस्वीर निवेदिता और ओली बुल के संयुक्त प्रयास से खींची गयी थी। निवेदिता के बारे में श्रीमाँ ने कहा था, 'मानो साक्षात् देवी। नरेन की कितनी श्रद्धा करती है। नरेन का जन्म इस देश में हुआ है, इस कारण वह सर्वस्व छोड़कर यहाँ आ मन-प्राण से उसका काम कर रही है। क्या गुरुभक्ति है ! कितना प्यार है इस देश के प्रति !' और अपने प्रति निवेदिता की भक्ति के बारे में उन्होंने कहा था, 'मेरे लिये वह क्या करे यह समझ नहीं पाती थी। रात को जब मुझे देखने आती तो रोशनी से मेरी आँखों को कष्ट न हो इसलिए कागज लेकर कमरे की रोशनी से आड़ कर देती। प्रणाम कर अपने रुमाल से कितनी सावधानी से मेरे पैरों की धूल लेती। मैं देखती पैरों पर हाथ देने में भी वह संकुचित होती।' निवेदिता की मृत्यु के समाचार से श्रीमाँ को गहरा दुःख़ पहुँचा था। निवेदिता की बात करते ही उनकी आँखें छलछला उठतीं। एक महिला भक्त से उन्होंने कहा था, 'जो सुप्राण होता है उसके लिए महाप्राण (अन्तरात्मा) रोता है, जानती हो?'

निवेदिता ने उन्हें एक चादर दी थी। जीर्ण हो जाने के बावज़ूद

श्रीमाँ ने उसे सम्भालकर रखा था। कहतीं—'कपड़े को देखते ही निवेदिता की याद आती है। क्या लड़की थी !' निवेदिता के बारे में श्रीमाँ ने कहा था, 'निवेदिता यहीं की है, केवल उनके (अर्थात् श्रीरामकृष्ण के) भावप्रचार करने हेतु उस देश में जन्मग्रहण किया था।'

* * * *

श्रीमाँ स्त्री-पुरुष दोनों को ही संयत जीवन-यापन करने की बात कह गयी हैं। वयस्क पुरुषों के साथ व्यवहार और मेलजोल में स्त्रियों को एक व्यवधान रखकर चलना चाहिए, यहाँ तक कि खराब चरित्र की स्त्री से भी दूरी रखनी चाहिए। अतिरूपवती और कम उम्र की एक विधवा शिष्या से श्रीमाँ ने कहा था, 'देखो, मुझे डुबाना मत, शिष्य का पाप गुरु को भोगना पड़ता है। किसी से मेलजोल मत रखना, किसी भी चीज़ में मत रहना। घड़ी की सुई के समान इष्टमन्त्र का जाप करना। ... पुरुष जात का कभी विश्वास मत करना—दूसरे की तो बात ही क्या, अपने पिता पर भी विश्वास मत करना, भाई पर भी नही, यहाँ तक कि स्वयं भगवान् भी यदि पुरुष रूप धारण कर तुम्हारे सामने आयें तो उन पर भी नहीं।' और एक विशेष मामले में पुरुष भक्त को भी श्रीमाँ ने कहा है, 'स्त्री का कभी विश्वास मत करना, स्त्री सबकुछ कर सकती है।'

गृहस्थ-जीवन में संयम के बारे में श्रीमाँ ने श्रीरामकृष्ण की बात को उद्धृत किया है, 'ठाकुर दो-एक बच्चे होने के बाद संयम में रहने की बात कहते। इन्द्रिय-संयम चाहिए। यह जो विधवाओं के लिए इतनी व्यवस्थाएँ हैं, सब इन्द्रिय-संयम के लिए ही तो हैं।' फिर अन्यत्र कहा, 'अंग्रेज विषय समझकर बच्चे को जन्म देते हैं—इतनी सम्पत्ति है, इसमें एक बच्चा होने से ठीक-ठाक चलेगा और वह होने के बाद पति-पत्नी दोनों अलग अपना-अपना काम लिए रहते हैं। और हमारी जात?'

गृहस्थी के कामकाज में श्रीमाँ की असाधारण दक्षता नज़र आती। श्रीमाँ चाहतीं, परिवार में जो भी रहें वे छोटे-बड़े सारे काम श्रद्धा सहित करें। वे स्वयं भी वैसा ही करतीं। एक झाड़ू का भी सम्मान करने की सीख दे गयी हैं। काम के बाद किसी आत्मीया ने जब झाड़ू को एक किनारे फेंक दिया तो श्रीमाँ ने उससे कहा था, 'जिसकी रक्षा करोगी, उसके द्वारा तुम्हारी भी रक्षा होगी। पुनः उसकी ज़रूरत पड़ेगी ही। इसके अलावा इस परिवार का वह भी तो एक अंग है। उस लिहाज से भी उस झाड़ू की एक इज़्ज़त है। जिसका जो सम्मान है, वह उसे देना ही चाहिए। झाड़ू का भी सम्मान करना चाहिए।'

*　　*　　*　　*

श्रीमाँ को अपव्यय बिल्कुल पसन्द न था। ठाकुर ने उनको छींका बनाने के लिए पाट दिया था। छींका बन जाने पर जो रेशे बच गये, उन्हें फेंकने के बजाय उन्होंने उससे तकिया बनाने के काम में ले लिया। सब्जी-तरकारी के छिलके गाय-बकरी को खिला देतीं। कहतीं : 'जिसका जो प्राप्य है, वह उसे देना चाहिए। मनुष्य जो खाता है, वह गाय को नहीं देना चाहिए, जो गाय खाती है, वह कुत्ते को नहीं देना चाहिए; गाय और कुत्ते न खायें तो पोखर में डाल देने से मछलियाँ खा लेंगी —पर उसे नष्ट नहीं करना चाहिए।'

एक भक्त ने डलिया में फल भेजे। अन्य लोगों ने फल लेकर डलिया फेंक देने को कहा। किन्तु श्रीमाँ ने डलिया को धोकर सहेजकर रख दिया कि बाद में शायद किसी काम आ जाए। एक बार ठाकुर के नैवेद्यवाले दूध में एक छोटी मछली गिर गयी। सेवक ने दूध को फेंक देना चाहा पर श्रीमाँ ने कहा, 'फेंकोगे किसलिए? इस दूध से ठाकुर का भोग चाहे न लगे, पर घर में बच्चे तो हैं, वे पी लेंगे।'

*　　*　　*　　*

गोलाप-माँ को श्रीमाँ ने कहा था, 'सत्य यदि अप्रिय हो तो कदापि नहीं कहना चाहिए।' फिर अन्यत्र कहा था, 'पृथ्वी के समान सहिष्णुता चाहिए। पृथ्वी पर कितने प्रकार के अत्याचार होते हैं, परन्तु वह सब सह रही है। मनुष्य को भी ऐसा ही होना चाहिए। समय आने पर सबकुछ सहन करना पड़ता है; समय आने पर बकरी के चरणों पर भी फूल चढ़ाना पड़ता है।' श्रीमाँ कहा करतीं, 'परिवार में किस प्रकार रहना चाहिए, जानते हो?—जब जैसा तब वैसा, जिसको जैसा उसको वैसा, जहाँ जैसा वहाँ वैसा।'

फिर कहा, 'लोग केवल दोष देखते हैं। गुण देखना चाहिए। तोड़ तो सभी सकते हैं, कितने ऐसे हैं जो निर्माण कर सकें? निन्दा-ठिठोली तो सब कर सकते हैं, परन्तु सुधार कितने लोग कर सकते हैं?'

* * * *

गृहस्थ साधु-सेवा करें एवं साधु-सन्तों के प्रति श्रद्धा का प्रदर्शन करें, यह श्रीमाँ चाहती थीं। संन्यासी शिष्य के बैठने के आसन को सिर से छूकर उन्होंने कहा है, 'कितने भाग्य से गृहस्थ के द्वार पर साधु की चरणरज पड़ती है। साधु के आसन का स्थान सिर के ऊपर ही तो है। हम गृहस्थ हैं, हमारा यही तो धर्म है।'

कोआलपाड़ा में एक ब्रह्मचारी श्रीमाँ के सामने बैठकर लिख रहा था। जाते समय असावधानी से एक भद्र महिला का आँचल ब्रह्मचारी की पीठ से लग गया तो श्रीमाँ ने विरक्त होकर कहा था, 'यह क्या? लड़का मेरे सामने बैठकर लिख रहा है, पुरुष है, तुम्हें बिल्कुल भी होश नहीं—उसकी पीठ पर आँचल लगाकर जा रही हो! अरे, वे ब्रह्मचारी है और तुम लोग स्त्री। उनकी श्रद्धा करनी चाहिए। प्रणाम करो।' साधुओं के बारे में श्रीमाँ ने कहा है कि उनकी किसी बात या मन के विचार से गृहस्थ का अमंगल हो सकता है, यह तुम्हें ज्ञात नहीं। उन्हें देखकर उनकी भक्ति करनी चाहिए, उनके प्रति अवज्ञा प्रदर्शित करना उचित नहीं।

* * * *

श्रीमाँ की व्यावहारिक बुद्धि और साधारण ज्ञान (सामयिक ज्ञान) असाधारण था। एक भक्त ने पत्र में श्रीमाँ को बताया कि जो नौकरी वह करते हैं उसमें समय-समय पर झूठ बोलना पड़ता है, इसलिए वे नौकरी छोड़ देना चाहते हैं, किन्तु पारिवारिक दुरावस्था के कारण ऐसा नहीं कर पा रहे हैं। इस बारे में उनके लिए क्या उचित होगा?—पत्र सुनकर श्रीमाँ ने तनिक सोचा फिर सामने बैठे पत्र-लेखक से कहा, 'उसे नौकरी न छोड़ने को लिख दो। ... आज वह छोटा-मोटा झूठ बोलने से डर रहा है, किन्तु नौकरी छोड़कर जिन अभावों से गुज़रना पड़ेगा, उसे चोरी-डकैती तक से डर नहीं लगेगा।' चोरी-डकैती तक से डर नहीं लगेगा—इस अंश को ज़ोर देकर उन्होंने दो-तीन बार कहा। पत्र-लेखक श्रीमाँ की दूरदृष्टि देख अवाक् रह गया।

* * * *

स्वामी विवेकानन्द की शिष्या श्रीमती ओली बुल ने श्रीमाँ से प्रश्न किया था कि गुरु के प्रति आनुगत्य या अनुसरण का तात्पर्य क्या है? उत्तर में श्रीमाँ ने कहा था, 'किसी को गुरु मानने से आध्यात्मिक उन्नति के लिए उनकी हर बात सुननी और माननी चाहिए। किन्तु सांसारिक विषय में अपनी सद्‌बुद्धि से प्रेरित हो काम करने से—किन्हीं मामलों में उस काम को गुरु का अनुमोदन प्राप्त होता है - तो यह गुरु की श्रेष्ठ सेवा मानी जाएगी।'

* * * *

श्रीमाँ के बारे में श्रीरामकृष्ण ने कहा है, 'वह ज्ञानदायिनी है।' यह ज्ञान पारमार्थिक ज्ञान है—जो ज्ञान मनुष्य को समस्त दुःखों से आत्यन्तिक निवृत्ति दिलाता है। यही ज्ञान सारदादेवी मातृत्व की पुड़िया में देंगी और इसीलिए विश्वमातृत्व की उनकी भूमिका है। इसीलिए श्रीमाँ की पुकार

सुनने को वे व्याकुल हैं। सन्तान के कल्याण के लिए ही उनकी चाह है कि सन्तान उन्हें 'माँ' के रूप में पहचाने। रासबिहारी महाराज (स्वामी अरूपानन्द) ने कम उम्र में ही अपनी गर्भधारिणी माँ को खो दिया था। इसलिए माँ पुकारने की उन्हें आदत नहीं थी। श्रीमाँ को भी वे 'माँ' कहकर बुला न पाते। श्रीमाँ ने इसे लक्ष्य किया। एक दिन रासबिहारी महाराज को बुलवाकर श्रीमाँ ने चचेरे भाई को एक समाचार देने को कहा। समाचार बताने के बाद श्रीमाँ ने पूछा, 'बताओ तो क्या कहोगे?' रासबिहारी महाराज बोले, 'कहूँगा, उन्होंने आपको ये-ये कहने का कहा है।' श्रीमाँ ने संशोधन करते हुए कहा, 'कहना, माँ ने कहा है।'—माँ शब्द का उच्चारण उन्होंने ज़ोर देकर कहा।

* * * *

एक युवक भक्त को दीक्षा देकर श्रीमाँ ने कहा, 'ठाकुर ही तुम्हारे गुरु हैं।' युवक ने प्रश्न किया, 'फिर आप कौन हैं?' श्रीमाँ ने कहा, 'मैं हूँ माँ।' युवक मान नहीं रहा था, बोला, 'यह कैसे हो सकता है? मेरी माता तो घर पर हैं, जिन्होंने मुझे गर्भ में धारण किया।' श्रीमाँ ने कहा, 'मैं भी तुम्हारी माँ ही हूँ।' युवक मान नहीं रहा था। उसका हिसाब सीधा था—ठाकुर इष्ट, सारदादेवी गुरु और उसकी माँ उसके घर में है। श्रीमाँ ने ज़ोर देकर कहा, 'नहीं, मैं ही तुम्हारी वह माँ हूँ। मुझे ठीक से देखो।' युवक-भक्त ने स्पष्ट रूप से श्रीमाँ की श्रीमूर्ति की जगह अपनी गर्भधारिणी माँ को ही देखा।

* * * *

श्रीमाँ जब दीक्षा देतीं तो भाषा की कोई बाधा न होती। श्रीमाँ जब दक्षिण में गयीं तो उस अँचल के भक्त आकर कहते—'मन्त्रम्' 'उपदेशम्'। वहाँ दीक्षा-दान के समय उनके मन के भीतर से जो मन्त्र उठता, वही वे दीक्षार्थी को देतीं और उसी से लोग सन्तुष्ट भी हो जाते। वे कहतीं,

'किसी को मन्त्र देते वक्त मन से ही यह आवाज़ उठती, "यह दो, यह दो"। और किसी-किसी को मन्त्र देते समय मन में कुछ आता ही नहीं, लगता जैसे कुछ जानती ही नहीं। बैठी ही हूँ! बाद में बहुत सोचते-सोचते मन्त्र नज़र आता। जो अच्छा आधार होता है, उसके समय तत्क्षण मन से मन्त्र उठता।'

* * * *

सन् १९१८ की बात है। जयरामबाटी से मलेरिया भोगकर श्रीमाँ स्वाथ्यलाभ के लिए कोलकाता आईं। ऐसे ही समय श्रीमाँ के घर में एक पारसी युवक आया। श्रीमाँ के दर्शन-लाभ से धन्य होकर वह बोला, 'माईजी, कुछ मूलमन्त्र दीजिये जिससे खुदा पहचाना जाए।' उस वक्त भक्तों के लिए दर्शन बन्द था, फिर भी दुर्बल शरीर में श्रीमाँ ने उस युवक को दीक्षा दी। उनसे विदा लेते समय युवक ने हिन्दी में कहा, 'माईजी, मैं जा रहा हूँ।' श्रीमाँ ने बँगला में कहा, 'जा रहा हूँ नहीं कहना चाहिए, बेटा, कहो आ रहा हूँ।' एक सेवक ने श्रीमाँ की बातों का अनुवाद करते हुए युवक से कहा, 'Mother says, don't say "I am going", say "I am coming".' सुनकर युवक अवाक् हुआ। सोचा, मैं तो जा रहा हूँ। श्रीमाँ 'आ रहा हूँ' कहने को क्यों कह रही हैं। यही पारसी युवक बाद में फिल्म-अभिनेता और निर्देशक सोहराब मोदी के नाम से विख्यात हुआ। जीवन के अन्तिम दिनों में अस्वस्थ अवस्था में स्वामी निरामयानन्दजी से उन्होंने कहा था, 'उस वक्त जो समझ में नहीं आया, आज मैं समझ पा रहा हूँ—मैंने उनके पास से "चले जाना" चाहा था, किन्तु आखिर तक "जा नहीं" सका। हममें से कोई भी नहीं (जा) सका। श्रीमाँ के पास हमें लौट कर आना ही होगा। मेरे जीवन की अन्तिम उपलब्धि यही है कि मैं माँ के पास लौटकर आ रहा हूँ—I am returning to my Mother.'

* * * *

श्रीमाँ रामकृष्ण मठ एवं मिशन की संघजननी थीं। उन्हें संघजननी का विशेषण स्वामी विवेकानन्द ने दिया था। विदेश से लौटकर १ मई १८९७ को बलराम बसु के घर में त्यागी एवं गृहस्थ भक्तों की सभा कर स्वामीजी ने 'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना की। उस दिन सभा के प्रारम्भ में ही स्वामीजी ने कहा था, 'मठ और मिशन के लिए कुछ धन संग्रह हुआ है, हमारी श्रीमाँ देश में हैं, उनके हाथ-खर्च के लिए स्थायी कोष के सूद से सबसे पहले कुछ दिया जाना मेरी राय में उचित है, इस विषय में आप लोगों का क्या मत है?' सभी ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया, किन्तु श्रीमाँ को कितनी राशि दी जाए, इस बारे में अनेकों ने कहा, 'ब्राह्मण की विधवा हैं, गाँव में रहती हैं, जो हो सामान्य ५-७ रुपया देने से ही चलेगा।' इससे स्वामीजी अत्यन्त दुःखित हो बोले, 'हम संन्यासी हुए हैं, पुरुष हैं, आवश्यकता हुई तो भिक्षा करके भी मठ को चला सकते हैं। श्रीमाँ को श्रीरामकृष्णदेव की सहधर्मिणी होने के नाते क्या केवल हमारी गुरुपत्नी मानते हो? वे मात्र वे नहीं हैं, भाई। आज हमारा यह जो संघ बनने जा रहा है, वे उसकी रक्षाकर्त्री, पालनकारिणी, हमारी संघजननी हैं।'

श्रीरामकृष्ण के देहावसान के पश्चात् त्यागी युवक भक्त परिव्राजक हो इधर-उधर घूम रहे थे। समाज की विभिन्न प्रतिकूलताओं के बीच उन्हें आदर्श का प्रदीप जलाए रखना पड़ा था। ऐसे समय श्रीमाँ ही थीं उनकी प्रेरणा। ठाकुर से रो-रोकर उन्होंने संघ के लिए प्रार्थना की। उनकी एकमात्र सहचरी योगीन-माँ ने कहा है, 'जो कुछ भी (मठ-मिशन आदि) देख रहे हो, सब उनकी (श्रीमाँ की) कृपा से है ! जहाँ जो दिख गया—सिला-लोढ़ा (देव-विग्रह), रो-रोकर विनती की है, ठाकुर ! मेरे बच्चों को सिर छिपाने की थोड़ी-सी जगह कर दो, उनके भोजन की व्यवस्था करो।' श्रीमाँ की वह इच्छा पूर्ण हुई।

स्वामीजी के अतिरिक्त केवल श्रीमाँ ही समझ पाई थीं कि श्रीरामकृष्ण

के आगमन का एक युगान्तकारी तात्पर्य है। उनका भाव-चिन्तन उनके देहत्याग के पश्चात् भी इस संसार में युग-युग तक जीवित रहेगा और इसके लिए आवश्यकता होगी एक संन्यासी-संघ की, जिस संघ के संन्यासी केवल अपनी आध्यात्मिक उन्नति में ही नहीं लगे रहेंगे, बल्कि जो साथ ही साथ जगत्-कल्याण के लिए भी काम करेंगे। इसीलिए श्रीरामकृष्ण के देहावसान के पश्चात् श्रीमाँ ने इतने व्याकुल हो इसके लिए प्रार्थना की थी।

* * * *

संघ-निर्माण के पीछे श्रीमाँ की इस प्रेरणा का वर्णन स्वामीजी ने सन् १९०० में अपने विख्यात भाषण—'मेरा जीवन और ध्येय' (My Life and Mission) में किया है : 'एक दिन हमारे गुरुदेव के देहान्त का दुःखमय दिन आ उपस्थित हुआ। ... हमारे कोई बन्धु-बान्धव तो विशेष थे नहीं। ... मात्र बारह बालकों को बड़े-बड़े आदर्श की बात कहते। और जो वे कहते उन आदर्शों को जीवन में उतारने को वे बालक दृढ़संकल्पबद्ध थे। लोग उन बातों को सुनकर उपहास करते। उपहास ने क्रमशः गम्भीर रूप धारण किया। हम लोगों पर सचमुच अत्याचार शुरू हुए। ... उस दिन हमारे प्रति सहानुभूति दिखानेवाला कोई नहीं था। ... केवल एक जन को छोड़कर। उस एक जन की सहानुभूति ही हमारे लिए आशीर्वाद एवं आशा वहन कर लायी। और यह एक जन थीं ... हमारे गुरुदेव की सहधर्मिणी। किन्तु वे निःसहाय थीं। हमसे भी दरिद्र थीं वे।

* * * *

श्रीमाँ को साक्षात् जगज्जननी के रूप में अनुभव करने के कारण उनके पास जाने पर स्वामीजी अनेक समय विह्वल हो जाते। एक दिन वे हरि महाराज (स्वामी तुरीयानन्द) के साथ मठ से नौका पर श्रीमाँ के

दर्शन करने जा रहे थे। जाते-जाते बार-बार गँदला गंगाजल पी रहे थे। हरि महाराज ने कहा, 'बार-बार गँदला पानी पी रहे हो, अन्ततः क्या सर्दी लगवाओगे?' स्वामीजी बोले, 'नहीं भाई, डर लग रहा है। मन तो हमारा है, श्रीमाँ के पास जा रहे हैं, भय काहे का।' ठाकुर जिन्हें पवित्रता की प्रतिमूर्ति मानते थे, उन स्वामीजी के मुख से यह उक्ति ! यह तो ऐसा था मानो वे श्रीमाँ की पूजा को जा रहे थे। पूजा प्रारम्भ करने से पहले जैसे पूजक देह एवं अन्तर को शुद्ध कर लेता है, उसी प्रकार मानो वे स्वयं को शुद्ध कर ले रहे थे।

* * * *

संन्यासियों को माता के समान स्नेह करने के कारण ही वे संघजननी नहीं थीं, संघ के आदर्श को परिपुष्ट करती थीं, आवश्यकता पड़ने पर संघ के दिक्पाल संन्यासियों को दिशा-निर्देश देती थीं—इसीलिए वे संघजननी थीं। संघ के समस्त संन्यासियों के लिए श्रीमाँ का आदेश ही अन्तिम वाक्य था—यहाँ तक कि स्वामी विवेकानन्द के लिए भी। श्रीमाँ के समस्त आदेशों-इच्छाओं को स्वामीजी सिर झुकाकर ग्रहण करते। चोरी करने के अपराध में एक बार उन्होंने मठ के एक कर्मचारी को निकाल दिया था। श्रीमाँ उन दिनों कोलकाता में १०/२ बोसपाड़ा लेन के मकान में थीं। वह कर्मचारी श्रीमाँ के पास जाकर रोने लगा। श्रीमाँ ने उसकी सारी बात सुनी और फिर उसके स्नान-आहार की व्यवस्था की। शाम को स्वामी प्रेमानन्द मठ से श्रीमाँ को प्रणाम करने आये तो श्रीमाँ ने कहा, 'देखो बाबूराम ! यह बड़ा गरीब आदमी है। अभावों में पड़ने के कारण इसने वैसा किया और इसलिए नरेन ने इसे डाँट-डपटकर निकाल दिया। तुम संन्यासी हो, गृहस्थी की परेशानियों को तुमलोग बिल्कुल भी नहीं समझते, इसे वापस रख लो।' प्रेमानन्दजी बोले, स्वामीजी खूब नाराज़ हो जाएँगे। श्रीमाँ ने तब उत्तेजित स्वर में कहा, 'मैं कह रही हूँ, ले जाओ।' प्रेमानन्दजी जब मठ में लौटे तो

उनके साथ उस कर्मचारी को देखकर स्वामीजी बोल उठे, "बाबूराम की करतूत तो देखो, उसे फिर से ले आया है।" किन्तु जैसे ही प्रेमानन्जी ने श्रीमाँ के आदेश की बात कही, स्वामीजी ने फिर कोई आपत्ति नहीं की।

* * * *

सन् १९०१ में स्वामीजी ने मठ में दुर्गापूजा करना चाहा। शिष्य शरत्चन्द्र चक्रवर्ती को उन्होंने बताया—'श्रीमाँ की रुधिर से पूजा करूँगा।' इस बारे में श्रीमाँ से अनुमति माँगने पर वे बोलीं, 'हाँ बेटा, मठ में दुर्गापूजाकर शक्ति की आराधना ज़रूर करो। शक्ति की आराधना न करने से क्या जगत् में कोई कार्य सिद्ध हो सकता है? पर बेटा, बलि न देना, प्राणी हत्या न करना। तुम लोग संन्यासी हो, समस्त प्राणियों को अभयदान देना ही तुम्हारा व्रत है।' श्रीरामकृष्ण मना करते तो नरेन्द्रनाथ शायद शास्त्रीय तर्क उपस्थित करते, किन्तु संघजननी के आदेश को उन्होंने सिर नवाकर स्वीकार किया। उसी दिन से रामकृष्ण संघ के समस्त केन्द्रों में बलि-निषेध हो गया।* इतना ही नहीं, स्वामीजी ने सभी को बताया, 'संकल्प श्रीमाँ के नाम से होगा। हम सब लंगोटीधारी हैं—हमारे नाम से नहीं होगा।' उस दिन से रामकृष्ण मठ के समस्त केन्द्रों में दुर्गापूजा का संकल्प श्रीमाँ के नाम से होता आ रहा है।

* * * *

संघ गठन के मामले में विवादास्पद विषयों की समाधानकर्त्री थीं - श्रीमाँ। स्वामी विवेकानन्द की 'शिवज्ञान से जीव-सेवा' की धारणा बहुत लोग मन से उस वक्त भी मान नहीं पा रहे थे। किन्तु श्रीमाँ की एक बात

---

* क्रिस्टीन को लिखे एक पत्र (तारीख १२ नवम्बर १९०१) के सूत्र से पता चलता है कि बेलुड़ मठ में सन् १९०१ की कालीपूजा की रात को अन्तिम बलि हुई थी। इससे यह लगता है कि बलि सम्बन्धी यह निषेध श्रीमाँ ने काली-पूजा के बाद ही किया होगा।

से हमेशा के लिए इस द्वन्द्व का समाधान हो गया। उन दिनों श्रीमाँ काशी में थीं। काशी में संघ का जो सेवाश्रम स्थापित हुआ था वहाँ रोगियों की सेवा का काम साधु लोग किया करते थे। श्रीमाँ एक दिन वह सेवाश्रम देखने आयीं। सब देख-सुनकर खूब खुश हो बोलीं, 'यहाँ ठाकुर स्वयं विराजमान हैं।' साधु-कर्मियों को उत्साह प्रदान करने के लिए सेवाश्रम में एक दस रुपये का नोट भी दान में दिया। बाद में एक भक्त के प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा था, 'मैंने देखा, वहाँ ठाकुर स्वयं प्रत्यक्ष विराजमान हैं—इसीलिए तो यह सब काम हो रहा है। यह सब उन्हीं का काम है।' स्वामीजी द्वारा प्रवर्तित सेवाधर्म के बारे में जिनके मन में प्रश्न था, श्रीमाँ की इस बात से उनके सारे संशय दूर हो गये। संन्यासियों से श्रीमाँ कर्मयोग तथा साधन-भजन दोनों को समान महत्व देने को कहतीं। आश्रम के कामों से जप-ध्यान में विघ्न पड़ सकता है, यह कहने पर एक बार श्रीमाँ ने कहा था, 'काम और किसका है? काम तो उन्हीं का है।'

* * * *

उन दिनों बेलुड़ मठ की देख-रेख स्वामी शिवानन्द करते थे। एक ब्रह्मचारी से कुछ भूल हो गयी तो सभी ने डर दिखलाया कि शिवानन्दजी उसे मठ निकाल देंगे। डरा हुआ ब्रह्मचारी किसी को बिना बोले एक वस्त्र में पैदल चलकर जयरामबाटी में श्रीमाँ के सामने हाज़िर हुआ। श्रीमाँ ने उससे सबकुछ सुनने के बाद शिवानन्दजी को लिखा था, 'माँ की नज़र में क्या बेटे का कोई अपराध होता है? बेटा ! तुम उसे कुछ न कहना।' और फिर उस ब्रह्मचारी को मठ में लौट जाने का कहा था। ब्रह्मचारी जब मठ में लौटा तो शिवानन्दजी ने उसे सीने से लगाकर कहा, 'बेटा, तू मेरे नाम से हाईकोर्ट में नालिश करने गया था?'

किन्तु संघ के मूल आदर्श से जब एक साधु विच्युत हुआ तब यही संघजननी कठोर हुई थीं और उससे कहा था, 'तुम होगे मेरी सन्तान

ही, परन्तु व्रतभंगकारी के किसी प्रायश्चित्त का संघ में कोई स्थान नहीं होगा।'

* * * *

मठ के समस्त संन्यासियों के लिए श्रीमाँ की बात ही अन्तिम थी। स्वामी ब्रजेश्वरानन्द ने कहा है कि वे मठ का कामकाज खूब करते थे इसलिए ठाकुर की सन्तान और अन्य संन्यासियों के स्नेहभाजन थे। इसके कारण उनके मन में अभिमान की वृद्धि हुई। उन्होंने तय किया कि वे कुछ दिन मठ के बाहर तपस्या में गुजारेंगे। मठ के पुराने संन्यासी इससे सहमत नहीं थे। श्रीमाँ की अनुमति मिल जाए तो और कोई आपत्ति नहीं करेगा, यह सोचकर ब्रजेश्वरानन्दजी श्रीमाँ के पास गये। जाकर बोले, 'माँ, मुझे एक बात कहनी है।' स्नेहमिश्रित स्वर में श्रीमाँ ने कहा, 'क्या? बोलो बेटे।' 'माँ, मैं कुछ दिन बाहर घूम आऊँ—फिर लौट आऊँगा। मठ में रहकर मेरा मन बिगड़ा जा रहा है; महाराज लोगों का स्नेह पाकर मैं अन्य साधुओं को कुछ समझता ही नहीं, कभी-कभी तो उन्हें ऊल-जलूल भी बोल देता हूँ।' श्रीमाँ बोलीं, 'कहाँ जाओगे, बेटा? पास में रुपये-पैसे हैं?' 'नहीं, ग्रैण्ड-ट्रंक रोड पकड़कर पैदल काशी की ओर चला जाऊँगा।' श्रीमाँ बोलीं, 'कार्तिक का महीना है—यम के चारों दरवाजे खुले हैं, लोग कहते हैं। मैं माँ हूँ, कैसे कह दूँ कि तुम जाओ। फिर सुन रही हूँ कि तुम्हारे पास रुपये-पैसे नहीं है, भूख लगेगी तो कौन खिलाएगा?' श्रीमाँ ने अनुमति नहीं दी और ब्रजेश्वरानन्दजी जा भी न पाये।

* * * *

श्रीमाँ के एक सेवक-संन्यासी ने एक दिन देखा : आधी रात को श्रीमाँ के कमरे में बत्ती जल रही है, वे शायद कुछ रही हैं। इतनी राते गये श्रीमाँ की नींद क्यों टूटी, वे यह देखने गये। जाकर देखते हैं कि

श्रीमाँ खुरपी हाथ में लिये पर्श पर कुछ कर रही हैं। मिट्टी की फर्श का एक हिस्सा, एक टुकड़ा ईंट या वैसा ही कुछ थोड़ा ऊँचा हो गया है। दिन के समय भक्त लोग आयेंगे, घर के लोग भी आना-जाना करेंगे, उन्हें ठोकर लग सकती है। इसीलिए आधी रात को सभी के अगोचर वे उसे समतल किये दे रही हैं।

* * * *

एक वर्ष अनावृष्टि से जयरामबाटी और उसके इर्द-गिर्द के गाँवों की फसल जलने लगी। निरुपाय किसानों ने श्रीमाँ से कहा, 'माँ, इस बार हमारे बाल-बच्चों के बचने की कोई उम्मीद नहीं है—सबको भूखों मरना होगा।' दुर्दशा की बात सुन किसानों के साथ श्रीमाँ खेत देखने चलीं। जली हुई फसल देखकर श्रीमाँ अत्यन्त विचलित हुईं। चारों तरफ देखकर व्याकुल स्वर में बोलीं, 'हाय, ठाकुर ! यह क्या किया ! आखिरकार क्या सब भूखे ही मरेंगे?' उसी रात भरपूर बारिश हुई। इस बार ऐसी फसल हुई जैसी कई वर्षों में नहीं हुई थी।

* * * *

श्रीमाँ के पास एक भक्त आये, जो नियमित रूप से शारीरिक व्यायाम करते थे। जिस दिन अधिक परिश्रम का काम या उठक-बैठक कर लेते उस दिन रात को अधिक खाते। इस कारण से खाना बनानेवाली ब्राह्मणी उन पर नाराज होती। एक दिन शाम को खाना बनानेवाली ने उस संन्तान से रुखे स्वर में पूछा कि ठीक से बताएँ कि रात को वे कितनी रोटियाँ खाएँगे। खाना बनानेवाली की बात श्रीमाँ के कानों में गई। व्यथित हो खाना बनानेवाली को लक्ष्य कर वे बोलीं, 'जवान लड़का है, भरपेट रोटियाँ खाएगा। जितनी खा पाएगा, खाएगा, इसमें गिनती कैसी? तुम्हें कुछ नहीं करना होगा, लड़कों को मैं ही देख लूँगी !' श्रीमाँ की बातों से खाना बनानेवाली लज्जित हो वहाँ से सरक गई।

*   *   *   *

एक बार बहुत दिनों के बाद श्रीमाँ जयरामबाटी से कोलकाता आ रही थीं, साथ में थीं - गोलाप-माँ और योगीन-माँ। श्रीमाँ के चरणों में प्रणिपात होने के लिए अधीर स्वामी प्रेमानन्द और स्वामी ब्रह्मानन्द हावड़ा स्टेशन में प्रतीक्षा करने लगे। गर्मियों के दिन, ऊपर से ट्रेन आयी नियत समय के तीन घण्टों के बाद। गर्मी में सभी पसीने से तर-ब-तर थे। योगीन-माँ ने बड़ी सावधानी से श्रीमाँ को ट्रेन से उतारा। फिर महाराज लोगों पर दृष्टि पड़ते ही गोलाप-माँ चीख उठीं - 'हैं महाराज ! तुम लोगों के क्या थोड़ी-सी भी अक्ल नहीं है? इस गर्मी में माँ तप-तपाकर आई हैं और पैर छूने के लिए यदि तुम लोग झमेला करोगे तो औरों का तो कहना ही क्या?' नितान्त अपराधी की नाईं महाराज लोग प्रणाम करने को न बढ़े, किन्तु मन में सोचा कि श्रीमाँ के साथ बागबाज़ार तक जाकर यह देख आना उचित होगा कि उनके ठहरने की व्यवस्था ठीक-ठाक है या नहीं।

श्रीमाँ के चले जाने पर भिन्न गाड़ी से वे सभी वहाँ पहुँचकर नीचे बैठे रहे। ऐसे समय पसीने में भीगे गिरीष घोष भी वहाँ आ पहुँचे—वे भी श्रीमाँ के दर्शनों के प्रार्थी थे। वे यथासम्भव धीमे स्वर में बोल रहे थे, परन्तु उनके गले का स्वर यों ही बड़ा गम्भीर था। वह आवाज़ ऊपर पहुँची और ऊपर से गोलाप-माँ अपने उसी मिजाज के साथ उतर कर आईं। परन्तु इस बार दृश्य परिवर्तित हो चुका था और अब नायक की भूमिका में थे - गिरीशचन्द्र। गोलाप-माँ बोलीं, 'मैं कहूँ गिरीशबाबू ! माँ को देखने आये हो, पर माँ तो आई हैं तप-तपाकर—कहाँ थोड़ा आराम करेंगी कि यहाँ भी चले आये परेशान करने !' उन बातों को अनसुना करते हुए गिरीशबाबू बोले, 'चलो, चलो, महाराज,बाबूराम, चलो माँ को देख आएँ।' यह कहकर वे सीधे ऊपर चले। गोलाप-माँ फिर चीखीं तो गिरीशबाबू बोले उठे, 'कर्कशा स्त्री कहती है कि हम

श्रीमाँ को परेशान करने आये हैं। कहाँ तो इतने दिनों बाद आकर बच्चों का मुख देखकर श्रीमाँ के प्राणों में ठण्डक होगी, और ये मातृस्नेह सिखा रही है !' वे ऊपर चले गये और श्रीमाँ भी उन्हें देखकर खूब खुशी हुईं। पीछे-पीछे गोलाप-माँ भी आ पहुँची। भीगी आँखों से उन्होंने श्रीमाँ से कहा, 'आखिरकार गिरीशबाबू ने भी मुझसे ऐसे बात की।' श्रीमाँ ने कहा, 'अनेक बार तुमसे कहा है कि मेरे बच्चों के बारे में कोई टीका-टिप्पणी न किया करो।' विजय-गर्व से गिरीशबाबू नीचे उतर आये !

* * * *

जयरामबाटी में श्रीमाँ के घर की दो गायों की देखभाल जो लड़का करता था, उसक नाम गोविन्द था। नौ-दस वर्ष के इस लड़के से सिर पर से इतनी कम उम्र में ही माँ-बाप का साया उठ गया था तथा बहुत दुःखों के बीच वह बड़ा हुआ था। कोई उसे चरवाहा कहता तो कोई ग्वाला। काम-काज अच्छा करता है एवं श्रीमाँ की स्नेह-छाया में जयरामबाटी में बहुत अच्छी तरह रहता है। एक बार उसे भयंकर खुजली की बीमारी हुई। दवा की व्यवस्था हुई, पर ठीक नहीं हुआ। एक दिन रात में गोविन्द को बहुत दर्द हुआ। खुजली की यन्त्रणा से असहाय बालक रोने लगा। अगले दिन भोर होते ही श्रीमाँ उसे घर के भीतर ले आईं। फिर अपने हाथों से सिल-लोढ़े पर नीम के पत्ते और हल्दी पीसने लगीं। विस्मित गोविन्द श्रीमाँ के पास ही खड़ा था। श्रीमाँ थोड़ा-थोड़ा कर पीसतीं और गोविन्द के हाथ में देकर बतातीं कि उसे वह कैसे लगाए। श्रीमाँ के मुख पर था गहन स्नेह और मातृहीन बालक के मुख पर थी - तृप्ति—दोनों का चेहरा देख और बातें सुनकर कौन कहता कि वह उनका अपना बेटा नहीं है? श्रीमाँ के यत्न से कुछ ही दिनों में गोविन्द स्वस्थ हो गया।

* * * *

स्वामी विवेकानन्द कहा करते कि छोटी-छोटी घटनाओं से ही मनुष्य का चरित्र उजागर हो उठता है। श्रीमाँ का मातृरूप भी ऐसी असंख्य दैनन्दिन घटनाओं से उज्ज्वलतर हो उठता है। उद्बोधन में श्रीमाँ के पास आईं एक महिला-भक्त, साथ में उसकी शिशुकन्या भी थी। कन्या श्रीमाँ के कम्बल के पास सोई थी—एक समय कम्बल गन्दा कर दिया। स्वभावत: उक्त महिला-भक्त हतप्रभ हो गयीं। किन्तु श्रीमाँ ने न सिर्फ कोई बुरा माना, बल्कि स्वयं ही कम्बल धोने चल दीं। आपत्ति करते हुए महिला ने कहा, 'माँ, तुम क्यों धोओगी?' श्रीमाँ ने संक्षेप में दिल को छूनेवाली भाषा में उत्तर दिया, 'क्यों न धोऊँ? वो क्या मेरी पराई है?' एक युवक सन्तान की दाहिने हाथ की अंगुली कट गयी थी—बाएँ हाथ में चम्मच ले वह अति कष्ट से खा रहा था। यह देखकर श्रीमाँ स्थिर न रह पाईं, अपने हाथों से उसे खिला दिया। केवल उसी दिन ही नहीं, जब तक उस युवक-सन्तान की अंगुली ठीक नहीं हुई, वह रोज श्रीमाँ के पास बैठकर शिशुवत आनन्द से श्रीमाँ के हाथों खाना खाता।

* * * *

जयरामबाटी के उत्तर-पश्चिम में कुछेक कोस दूर था मैनापुर गाँव। वहाँ से श्रीरामकृष्ण-ग्रन्थ के रचयिता श्री अक्षयकुमार सेन ने श्रीमाँ के लिए बढ़िया घी भेजा। घी लेकर मैनापुर गाँव की एक निम्न श्रेणी की मज़दूर महिला आई थी। रात में उसके सोने की व्यवस्था श्रीमाँ के बरामदे के दरवाजे के पास हुई। महिला एक तो मलेरिया की रोगी, ऊपर से पिछले दिन के परिश्रम के कारण रात को उसे ज्वर हो गया। भोर श्रीमाँ ने उठकर देखा कि बुखार के जोर से उसने बिस्तर गन्दा कर दिया है—और गहरी नींद में सो रही है। श्रीमाँ सोच में पड़ गयी—सुबह जब उसे पता लगेगा तो सभी उस महिला का तिरस्कार करेंगे, उसकी लाँछना की कोई सीमा न होगी। इसलिए श्रीमाँ ने धीरे से उसे

जगाया, मुरमुरे-गुड़ का नाश्ता बाँधकर उसके हाथ में दिया और कहा, 'बेटी, तुम सुबह-सुबह निकल जाओगी तो धूप में तकलीफ नहीं होगी।' महिला जब चली गयी तो किसी के नींद से उठने के पहले ही श्रीमाँ ने स्वयं सब साफ-सफाई कर दी। कोई कुछ समझ ही न सका।

* * * *

एक भक्त ने बहुत कष्टकर दूर देश से बढ़िया महीन सुगन्धित चावल मंगवाया और एक भक्तिमती महिला से श्रीमाँ को खिलाने के लिए उस चावल का पीठा बनवाया। पीठा लेकर जब वह जयरामबाटी के लिए रवाना हुए, तो शाम हो गयी। भोजन के समय कुछ ब्राह्मण भक्तों ने उन्हें याद दिलाया कि श्रीमाँ एक ब्राह्मण-विधवा हैं, रात को चावल की चीज़ मुँह में नहीं देंगी। भक्त के सिर पर तो मानो आसमान टूट पड़ा। सच ही तो है ! यह बात तो उसके ध्यान में ही नहीं आई। इतनी मेहनत, इतनी उम्मीद सब मानो व्यर्थ हो गये। ख़ैर, जो हो, उसने तय किया—श्रीमाँ के निमित्त तैयार वस्तु ले जाकर उन्हीं के चरणों में निवेदित कर देंगे। उन्हें ग्रहण करना होगा तो ग्रहण करेंगी, फेंकना होगा तो उनकी जैसी मर्जी। जयरामबाटी जब पहुँचे तो शाम हो गई थी। किन्तु श्रीमाँ ने सबकुछ देख-सुनकर प्रसन्न भाव से कहा, 'क्यों नहीं खाऊँगी, भला ! इतनी दूर से तुम लेकर आये हो, कितने कष्ट से इसे बनवाया है, और इतने कष्ट से दूर देश से और एक सज्जन ने इसे भेजा है। रात को ठाकुर को देकर खाऊँगी। इस बारे में तुम चिन्ता मत करो।' उपस्थित एक सन्तान को लक्ष्य करके श्रीमाँ ने मुस्कुराकर कहा, 'बच्चों के लिए मेरा कोई नियम-कानून ठीक नहीं रहता।' ऐसे ही और एक मामले में श्रीमाँ ने कहा था, 'बच्चों के कल्याण के लिए मैं सबकुछ कर सकती हूँ।' श्रीमाँ के अन्तर में अपने संसार भर के बच्चों की कल्याण-कामना निरन्तर प्रवहमान थी। इसीलिए जब एक चिकित्सक की पत्नी ने उनसे अपने पति के उपार्जन में उन्नति की प्रार्थना की तो

श्रीमाँ उस प्रार्थना को मंज़ूर न कर पायीं। बोलीं, 'वहू, क्या मैं यह आशीर्वाद दूँ कि लोग अस्वस्थ हों, कष्ट पाएँ? ऐसा तो मैं नहीं कर सकूँगी। सब अच्छे रहें, जगत् का मंगल हो।' रोज स्नान के पश्चात् उनके मुख से यही प्रार्थना उच्चारित होती : 'माँ जगदम्बे, जगत् का कल्याण करो।'

* * * *

श्रीमाँ के इस 'जगत्' में घर में पल रहे पशु-पक्षी, जीव-जन्तु भी शामिल थे। पोषित तोता 'गंगाराम' सबकी तरह पुकारता : 'माँ, ओ माँ।' और श्रीमाँ भी उत्तर देतीं : 'आई वेटा, आई।' यह कहकर पक्षी को चना-जल दे आतीं क्योंकि पक्षी के मातृसम्बोधन का अर्थ ही है कि उसे भूख लगी है। श्रीमाँ के स्नेह-यत्न से विल्ली निर्भय हो वंशवृद्धि करती, जबकि घर के लोग उसके उत्पात से विरक्त होते। उन्हें खुश करने के लिए श्रीमाँ कभी-कभी झूठा गुस्सा दिखाकर लाठी उठा लेतीं। किन्तु विल्ली डरकर श्रीमाँ के पैरों में ही आश्रय लेती। श्रीमाँ तत्काल लाठी फेंक देतीं। एक साधु ने एक बार पूछा था, 'तुम क्या सबकी माँ हो? ... इन सभी जीव-जन्तुओं की भी?' श्रीमाँ ने उत्तर दिया था, 'हाँ, उनकी भी।'

* * * *

एक दिन घाटाल से पैदल चलकर लोगों का एक समूह उद्बोधन में मातृदर्शन को आया। अत्यन्त दीन-हीन वेश, अस्त-व्यस्त केश। देखकर लगता था कि विल्कुल ही सम्बलहीन हों। लोगों के मुँह से श्रीमाँ के बारे में सुनकर बड़ी उम्मीद लेकर वे उनके दर्शन को आये थे, किन्तु आकर देखा, श्रीमाँ के मकान का दरवाजा बन्द है। इधर ठीक उसी समय किसी प्रयोजन से श्रीमाँ पहली मँजिल के बरामदे में आईं और देखा कि सामने खुले मैदान में बहुत सारे लोग उन्हीं की ओर

देखते हुए बैठे हैं। श्रीमाँ को देखते ही वे बोल उठे, 'माताजी, हम बहुत दूर से आये हैं, हमें क्या जगज्जननी के दर्शन मिलेंगे?' श्रीमाँ ने सेवक से कहा, 'उन्हें ले आओ। आहा, वे कितनी दूर से आकर बैठे हुए हैं।' सेवक ने कुछ संकोच से उत्तर दिया, 'माँ, वे तो टिड्डीदल के समान हैं, और बहुत गन्दे हैं। आप उन्हें अन्दर लाने को कह रही हैं?' श्रीमाँ ने व्यथित होकर कहा, 'पृथ्वी के सभी से मैं मिलती हूँ, और ये तो कितने कष्ट उठाकर आये हैं, इनसे न मिलूँ ! ले आओ उन्हें। बाहर से गन्दे हैं तो क्या हुआ, उनका भीतर बहुत साफ-सुथरा है।' वे अन्दर आये। श्रीमाँ के स्नेह-माधुर्य को भीतर ही भीतर अनुभव कर उनके थके हुए धूलमलिन मुख आनन्द से उज्ज्वल हो उठे। उस दिन ठाकुर के भोग के लिए एक भक्त ने प्रचुर परिमाण में समोसे और गुलाब जामुन भेजे थे। ठाकुर को निवेदित करने के पश्चात् श्रीमाँ ने वह सारा मुक्तहस्त से उनमें बाँट दिया। श्रीमाँ की स्नेह-करुणा का स्पर्श पाकर उन गरीब एवं सरल सन्तानों ने भी अनुभव किया कि वे सचमुच ही दीन-दुःखियों की माँ हैं, वे ही सबकी करुणामयी जननी हैं।

* * * *

और एक दिन का चित्र है। जयरामबाटी में श्रीमाँ का घर। रिमझिम-रिमझिम कर वर्षा हो रही है। आकाश मेघाच्छादित है। सुबह होने के बावज़ूद चारों ओर प्रायः अँधकार है। देखा गया कि खिड़की के रास्ते श्रीमाँ घर में प्रवेश कर रही हैं - सिर पर एक टोकरी में कुछ सब्जी-तरकारी है। घर में कुछ भक्त आये हैं—उनके लिए श्रीमाँ खुद गाँव से सब्जी-तरकारी संग्रहकर सिर पर ढो कर लाई हैं। बारिश में किसी और को कष्ट देना नहीं चाहती थीं।

* * * *

श्रीमाँ कहा करतीं : 'मैं सत् की भी माँ हूँ और असत् की भी';

'सती की भी माँ हूँ, असती की भी माँ।' कहतीं : 'तोड़ तो सभी सकते हैं, निर्माण कितने लोग कर सकते हैं? निन्दा-उपहास तो सभी कर सकते हैं, किन्तु उसे अच्छा कैसे किया जाए, यह कितने लोग बता सकते हैं?' जयरामबाटी के निकटवर्ती गाँव की एक बाल-विधवा क्षणिक भूल से कलंक लगा बैठी। सारा गाँव उसकी निन्दा में मुखर था। किन्तु श्रीमाँ उस बाल-विधवा की लज्जा और शर्म से मरी जा रही थीं। भगवान् से प्रार्थना किये जा रही थीं : 'भगवान्, उस दुःखिनी की ओर नज़र उठाकर देखो।' संयोग से श्रीमाँ की कृपापाप्त एक जमींदार ने सारी घटना को निपटा दिया। उस सन्तान को आशीर्वाद देते हुए श्रीमाँ ने कहा, 'बेटा ! तुमने दुःखिनी को बचाया, उसकी रक्षा की है, यह सुनकर मन में ठण्डक पड़ गयी। भगवान् तुम्हारा मंगल करेंगे।' पाप को घृणा करने के बावज़ूद पापी को सीने से लगा लेना, श्रीमाँ ही ऐसा कर सकती थीं।

* * * *

अपने लीलावसान से पूर्व श्रीरामकृष्णदेव ने श्रीमाँ से कहा था : 'कोलकाता के लोग मानो अँधकार में कीड़ों की तरह किलबिला रहे हैं। तुम उन्हें देखना।' ज्ञान-वैराग्य की बजाय तनिक शान्ति, स्नेह और प्रेम की आशा में लोग अधिक भीड़ जमाते। उनकी प्रकृति विभिन्न प्रकार की थी। उनकी भक्ति का उच्छ्वास कभी-कभी पागलपन का रूप ले लेता। कोई आकर श्रीमाँ के चरणों में खूब जोर से सिर ठोंक देता तो कोई प्रणाम करते समय श्रीमाँ के पैरों के अँगूठे को काट खाता—उद्देश्य होता, श्रीमाँ उसे याद रखें। कोई-कोई तो प्रणाम करने आता और दीर्घ प्राणायाम कर श्रीमाँ की पूजा तक शुरू कर देता और उधर वे मोटी-चादर में पसीने से तर हो रही होतीं। भक्ति के ये सारे उपद्रव श्रीमाँ हँसमुख हो सहन करतीं, प्रतिदिन बड़ी व्याकुलता से भक्तों की प्रतीक्षा करतीं। कभी-कभी अस्फुट स्वरों में सुन पड़ता श्रीमाँ का आन्तरिक

आह्वान : 'बच्चों तुम आओ।' इसीलिए कोई दिन भी कृपावर्जित न होता, जननी के आकर्षण में कोई न कोई सन्तान आ उपस्थित होती। अनेक अशुद्धचित्त भक्त आकर श्रीमाँ को प्रणाम करते, उनके स्पर्श से श्रीमाँ के शरीर में असह्य जलन होती। किन्तु इस प्रकार के भक्त उन्हें प्रणाम करने के सुयोग से वंचित न हों इस आशंका में वे सेवक को मना कर देतीं कि उनके कष्ट की बात स्वामी सारदानन्द से न कहे। भक्तों के लिए श्रीमाँ का यह कष्ट देखकर गोलाप-माँ ने एक बार शिकायत की थी : 'तुम्हें भी क्या हो गया है—माँ कहकर जो कोई भी आये, तुम पैर बढ़ा देती हो।' श्रीमाँ ने उत्तर दिया, 'क्या करूँ, गोलाप ! कोई माँ पुकारकर आये तो मैं रह नहीं पाती।'

* * * *

महासमाधि के पूर्व श्रीरामकृष्ण ने श्रीमाँ से कहा था कि उन्होंने क्या किया है, श्रीमाँ को उससे बहुत अधिक करना होगा। परवर्ती काल में वह 'बहुत अधिक' काम श्रीमाँ ने परम यत्नपूर्वक और निर्विकारभाव से किया। अलौकिक कृपावितरण के समय श्रीमाँ ने एक बार कहा था : 'उन्होंने (श्रीरामकृष्ण ने) चुने हुए लड़कें लिये हैं। ... और मेरे पास ठेल दी है चींटियों की कतार।' श्रीमाँ के दीक्षित शिष्य तथा अन्यतम जीवनीकार मानदाशंकर दासगुप्त ने लिखा है : 'इस चींटियों की कतार के लिए श्रीमाँ की दया और चिन्ता का अन्त न था। उनमें न तो कोई देवतुल्य था और न ही था कोई दिव्यगुण से विभूषित। वे अति साधारण मनुष्य थे, किन्तु जब वे आये तो श्रीमाँ ने दोनों हाथ बढ़ाकर उन्हें ग्रहण किया। थोड़ा अच्छा देखा तो आनन्दित हुईं और बहुत बार तो परिचय प्राप्त करने या कुछ पूछने तक की ज़रूरत नहीं समझी। यहाँ तक कि जब कोई अति अयोग्य व्यक्ति भी आया तो दया के वशीभूत हो अधिकांशतः उसे दीक्षा दी है। बहुत कम ही ऐसा हुआ जब किसी को लौटा देना चाहा हो। और उसमें भी अधिकांश ऐसा हुआ है कि

थोड़े-से रोने-धोने पर हार मानकर उन्होंने दीक्षा दे दी।

* * * *

एक दिन स्वामी ब्रह्मानन्द की चिट्ठी लेकर तीन भक्त दीक्षा के लिए श्रीमाँ के समक्ष उपस्थित हुए। आमतौर पर वात-रोग के कारण श्रीमाँ सामने की ओर पैर फैलाकर बैठी रहतीं, किन्तु तीनों भक्त जब प्रणाम करने पहुँचे तो अन्तर्यामिनी श्रीमाँ ने उनके अन्तस्तल तक को देख अपने पैर समेट लिये। श्रीमाँ की धीमी स्वगतोक्ति सुनाई दी : 'अन्ततः राखाल (स्वामी ब्रह्मानन्द) ने मेरे लिए यह भेजा? विदेश जाकर बेटा कितनी अच्छी वस्तुएँ भेजता है, और राखाल ने मेरे लिए यह भेजा?' दीक्षा देने पर शिष्य के पाप गुरु को लेने पड़ते हैं—श्रीमाँ उन्हें दीक्षा देने को राजी नहीं हुईं। ठाकुर का लक्ष्य कर बोलीं, 'ठाकुर, कल भी तुमसे प्रार्थना की थी कि दिन वृथा न जाए। अन्ततः तुम भी यह लाये?' तीनों भक्त भी कहाँ छोड़ने वाले थे। वे बार-बार श्रीमाँ से दीक्षादान का अनुरोध करते रहे। बहुत देर सोचने के बाद अन्ततः श्रीमाँ दीक्षादान के लिए राजी हुईं और कहा, 'जब तक शरीर रहे, ठाकुर, तुम्हारा काम करती जाऊँ।' दीक्षा हो गयी। कुछ दिन बाद मठ में जब यह खबर पहुँची, घटना का पूरा ब्यौरा सुनकर ब्रह्मानन्दजी काफी देर निःस्तब्ध बैठे रहे। और प्रेमानन्दजी गहरी साँस छोड़कर आवेग में कह उठे : 'कृपा, कृपा ! इस महिमयी कृपा के द्वारा ही श्रीमाँ हर वक्त हमारी रक्षा करती हैं ! कितना विष उन्होंने स्वयं ग्रहण किया है, यह व्यक्त करने के लिए हमारे पास भाषा नहीं है। यदि यह विष हम ग्रहण करते तो जलकर भस्म हो जाते।'

बिरले किसी दिन यदि श्रीमाँ के पास एक भी भक्त न आता तो देखने में आता कि वे विचलित हो अन्दर-बाहर कर रही हैं और व्याकुल हो ठाकुर से कह रही हैं, 'आज भी दिन वृथा ही गया। एक व्यक्ति भी नहीं आया ! तुमने ही तो कहा था "तुम्हें रोज कुछ न कुछ

करना होगा।" ... कहाँ ठाकुर, आज का दिन क्या वृथा जाएगा?' देखने में आता कि ज्ञानदायिनी जननी की लोककल्याण की आर्त-प्रार्थना पूर्ण करने के लिए ठाकुर किसी न किसी कृपाप्रार्थी को शीघ्र ही उनके पास हाज़िर कर देते। इसलिए कोई भी दिन प्रायः कृपावर्जित नहीं जाता। अशुद्धचित्त भक्त आकर श्रीमाँ को प्रणाम करते तो उनके देवशरीर में असह्य जलन और कष्ट होता, रोग दिखाई देता। फिर भी श्रीमाँ के कृपा-वितरण में विराम नहीं था। कोई मना करता तो कहतीं, 'क्योंजी, ठाकुर क्या खाली रसगुल्ला खाने को ही आये थे?' 'अच्छे लड़के की माँ तो सभी हो सकती हैं, बुरे को कौन अपनाएगा?' और कहतीं, 'हम तो इसीलिए आये हैं। हम यदि पाप-ताप न लें, हजम न करें, तो और कौन करेगा? पापी-तापियों का भार कौन वहन करेगा?' इसलिए यह जानते हुए भी कि शिष्य का पाप ग्रहण करना पड़ता है, करुणामयी श्रीमाँ 'दया करके' मन्त्र देतीं, 'कृपा करके' मन्त्र देतीं; और सोचतीं : 'शरीर तो जाएगा ही, फिर भी इनका भला हो।'

* * * *

अस्वस्थ शरीर होने के बावज़ूद कृपा-वितरण निरन्तर जारी था। मलेरिया भोगकर श्रीमाँ दुर्बल हो गयी थीं, इसलिए शरत् महाराज के निर्देश से दर्शन आदि सामयिक तौर पर बन्द थे। ऐसी परिस्थिति में सुदूर बरिशाल से दीक्षाप्रार्थी के रूप में एक भक्त का आगमन हुआ। एक तरफ भक्त की अकुलाहट, और दूसरी तरफ सेवक की कर्तव्यनिष्ठा—इन दोनों संघर्ष से वाद-विवाद का सूत्रपात हुआ। अचानक अस्वस्थ श्रीमाँ जैसे-तैसे कर दरवाजे पर उपस्थित हुईं। सेवक से पूछा, 'तुम क्यों रोक रहे हो?' सेवक ने बताया : शरत् महाराज ने मना किया है। श्रीमाँ तीव्र स्वर में बोल उठीं, 'शरत् क्या कहेगा? हम आये ही इसीलिए हैं। मैं उसे दीक्षा दूँगी।' अगले दिन श्रीमाँ ने उस भक्त को दीक्षा दी।

श्रीमाँ हमेशा जप करती दिखाई देतीं। उम्र के अन्तिम पड़ाव में जब शरीर दुर्बल था और जब अधिकांश समय बिस्तर पर लेटकर काटना पड़ता, तब भी उनके जप में विराम नहीं था। रात को बहुत कम सोतीं—जप करते हुए ही रात काटतीं। कोई सोने को कहता तो कहतीं, 'नींद है कहाँ? आती कहाँ है? लगता है, जितनी देर सोऊँगी उतनी देर यदि जप करूँ तो जीवों का कल्याण होगा।' कहतीं, 'क्या करूँ, लड़के व्याकुल हो आकर पकड़ते हैं, दीक्षा ले जाते हैं। पर कोई नियमित—नियमित तो क्या, कोई कुछ नहीं करता। तो जब भार लिया है तो उन्हें मुझे ही देखना होगा। इसीलिए जप करती हूँ और ठाकुर से उनके लिए प्रार्थना करती हूँ कि "हे ठाकुर, उन्हें चैतन्य दो, मुक्ति दो। इस संसार में दुःख-कष्ट बहुत हैं। उन्हें फिर न आना पड़े।" '

* * * *

श्रीमाँ ने कहा था, 'देखो, सब कहते हैं कि मैं "राधू-राधू" ही करती रहती हूँ। मुझे उससे बहुत लगाव है। यह लगाव यदि न होता तो ठाकुर के शरीर-त्याग के पश्चात् यह देह न रहती। अपने काम के लिए ही "राधू-राधू" कराकर उन्होंने यह देह रखी है। जब उसके ऊपर से मन चला जाएगा तब फिर यह देह भी नहीं रहेगी।'

सन् १९२० की फरवरी के अन्त में कालाज्वर रोग से आक्रान्त हो श्रीमाँ कोलकाता आईं। चिकित्सकों की आप्राण चेष्टा के बावजूद बीमारी भोगते-भोगते श्रीमाँ क्रमशः शीर्ण होने लगीं। और देखने में आया कि राधू के ऊपर से भी श्रीमाँ का मन क्रमशः उठता जा रहा है। स्वयं ही वे एक दिन बोलीं, 'अब मन सर्वदा उन्हें चाहता है, अन्य कुछ भी अब अच्छा नहीं लगता। यह देखो न, राधू को कितना प्यार करती थी, उसकी सुख-सुविधा के लिए कितना कुछ किया। अब सब उलट गया है। उसके सामने आने से बेजार लगता है। अपने काम के लिए ही ठाकुर ने इतने समय इन सबके माध्यम से मन को उतारकर रखा

था, अन्यथा उनके चले जाने के पश्चात् मेरा रह पाना क्या सम्भव होता?' आखिरकार श्रीमाँ ने एक दिन साफ-साफ कहा, 'शरत् से कहो कि उन्हें जयरामबाटी भेज दे !' सेविका ने पूछा, 'उन्हें भेजने को क्यों कह रही हैं? राधू को छोड़कर रह पाएँगी?' श्रीमाँ ने दृढ़ स्वर में कहा, 'खूब रह पाऊँगी, मन को उठा लिया है।' सब कुछ सुनकर सारदानन्दजी ने भारी हृदय से कहा, 'तो फिर माँ को अब और नहीं रख पाएँगे। राधू पर से जब उन्होंने अपना मन हटा लिया है, तो अब और कोई आशा नहीं है।'

देहत्याग के कुछ दिन पूर्व एक भद्र महिला से श्रीमाँ ने कहा, 'यदि शान्ति चाहती हो, बेटी, तो किसी का दोष मत देखो। देखना है तो अपने दोष देखो। जगत् को अपना बनाना सीखो। पराया कोई भी नहीं है, यह संसार तुम्हारा है।' इस संसार के लिए यही उनकी अन्तिम वाणी थी। और सभी को दे गयीं आशीर्वाद—'जो आये हैं, जो नहीं आये, और जो आयेंगे, मेरी समस्त सन्तानों को कह देना—मेरा स्नेह, मेरा आशीर्वाद सब पर है।'

अन्तिम दिन : ४ श्रावण १३२७ (बंगाब्द), २१ जुलाई १९२०। समय : रात डेढ़ बजे, मंगलवार।

श्रीमाँ सारदादेवी के सम्बन्ध में

श्रीरामकृष्ण :

विभिन्न समयों पर श्रीरामकृष्ण ने ये बातें कही हैं : 'वह शारदा है—सरस्वती—ज्ञान देने आयी है। रूप रहने पर अशुद्ध मन से देखने पर लोगों का अकल्याण हो सकता है, इसलिए इस बार रूप ढँककर आयी है।'

'वह ज्ञानदायिनी, महाबुद्धिमती है। वह कोई ऐसी-वैसी है ! वह मेरी शक्ति है।'

श्रीरामकृष्ण का भांजा हृदयराम उनकी जितनी सेवा करता, उतना ही दुर्व्यवहार भी करता। एक दिन आदतवश जब उसने श्रीमाँ के साथ भी असभ्य व्यवहार कर दिया तो श्रीरामकृष्ण ने उसे सतर्क करते हुए कहा था, 'ओरे रे हृदे, (स्वयं को दिखाकर) इसको तुच्छ समझकर बात करता है इसलिए उसे (श्रीमाँ को) कभी वैसी बात न कहना। इसके भीतर (अर्थात् श्रीरामकृष्ण के भीतर) जो है, फुफकार करे तो हो सकता है तू बच भी जाए; किन्तु उसके भीतर जो है, वह फुफकार मारेगा तो ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी तेरी रक्षा नहीं कर सकेंगे।'

एक बार श्रीरामकृष्ण को महसूस हुआ कि उनकी किसी बात से श्रीमाँ का मन व्यथित हुआ है। तत्काल व्याकुल हो अपने भतीजे रामलाल चट्टोपाध्याय को उन्होंने कहा था, 'ओरे रामलाल, जा अपनी चाची को जाकर शान्त कर। वह नाराज़ हो जाएगी तो इसका (अर्थात् उनका अपना) सब नष्ट हो जाएगा।'

अन्य एक समय श्रीरामकृष्ण ने कहा था, 'नौबत में जो है, वह यदि किसी कारण से किसी पर रुष्ट हो जाए तो उसकी रक्षा करना मेरी भी सामर्थ्य से परे है।'

स्वामी विवेकानन्द :

स्वामी विवेकानन्द सारदादेवी को श्रीरामकृष्ण से अभिन्न मानते थे। पश्चिम के लिए जाने के पूर्व जब उन्हें श्रीरामकृष्ण का निर्देश मिला, तब भी वे निश्चित नहीं हो पा रहे थे कि उनकी पाश्चात्य-यात्रा ईश्वर-अभिप्रेरित है या नहीं। तब उन्होंने सोचा : 'अच्छा, श्रीमाँ तो ठाकुर की अंशस्वरूपिणी हैं, उन्हें एक पत्र लिखा जाए। वे जैसा कहेंगी, वैसा ही करूँगा।' श्रीमाँ की अनुमति सहित पत्र मिलने के पश्चात् स्वामीजी निश्चिन्त हुए, बोले, 'आ: अब जाकर सब कुछ ठीक हुआ; माँ की भी इच्छा है कि मैं जाऊँ।' स्वामीजी की अंग्रेजी जीवनी में है कि श्रीमाँ की अनुमति मिलने के पश्चात् स्वामीजी समुद्र के किनारे जाकर आनन्द से नाचे थे। उस समय वे मद्रास में थे।

अमेरिका से स्वामी शिवानन्द को (वे 'महापुरुष महाराज' के नाम से परिचित हैं) लिखे एक विख्यात पत्र में स्वामीजी ने श्रीमाँ के बारे में लिखा है : 'माँ-ठकुरानी क्या वस्तु हैं समझ नहीं पाए, अभी कोई भी नहीं समझ पाएगा, धीरे-धीरे समझ में आएगा। शक्ति के बिना जगत् का उद्धार नहीं होगा। हमारा देश सबसे अधम क्यों है, शक्तिहीन क्यों है?—वहाँ शक्ति की अवमानना होती है, इसलिए। माँ-ठकुरानी भारत में पुनः महाशक्ति को जगाने आई हैं, उनका अवलम्बन कर फिर से सब गार्गी, मैत्रेयी, जगत् में जन्म लेंगी। ... इसलिए उनका मठ पहले होना चाहिए। रामकृष्ण परमहंस बल्कि जाएँ तो मुझे डर नहीं। माँ-ठकुरानी के जाने से तो सर्वनाश है ! शक्ति की कृपा न हुई तो कुछ नहीं हो सकता ! ... पहले माँ के लिए मठ बनाना होगा। पहले माँ और माँ की बेटियाँ, फिर पिता और उनके पुत्र ...। मुझ पर माँ की कृपा पिता की कृपा से लाख-गुना बड़ी है। ... ऐसी माँ के प्रति मैं भी कुछ कट्टर हूँ। माँ का हुक्म होते ही वीरभद्र भूतप्रेत सब कर सकता है। ... अमेरिका आने से पहले माँ को पत्र लिखा था कि आशीर्वाद दें, उन्होंने

एक आशीर्वाद दिया ...। माँ की बात याद आते ही कहता हूँ, "को रामः?" ... रामकृष्ण परमहंस ईश्वर थे कि मनुष्य थे, जो चाहे बोलो ... किन्तु माँ के प्रति जिसमें भक्ति नहीं है, उसे धिक्कार दो।'

१ मई १८९७ को बलराम बसु के मकान (जो अब बलराम मन्दिर के नाम से सुपरिचित है) में स्वामीजी ने श्रीरामकृष्ण के अन्य त्यागी एवं गृहस्थ शिष्यों की उपस्थिति में रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। उसी दिन सभा आरम्भ होने के ठीक पहले श्रीरामकृष्ण के शिष्यों की उपस्थिति में स्वामीजी ने यह निर्देश दिया था कि श्रीमाँ को रामकृष्ण-संघ की 'संघ-जननी' कहा जाए। उद्दीप्त कण्ठ से स्वामीजी ने कहा था : 'रामकृष्णदेव की सहधर्मिणी हैं इसलिए श्रीमाँ को हमारी गुरुपत्नी के रूप में मानते हो? वे सिर्फ उतना भर नहीं हैं, हमारा यह जो संघ बनने जा रहा है, उसकी रक्षाकर्त्री, पालनकारिणी, हमारी संघ-जननी हैं।'

जीवन के अन्तिम दिनों में एक दिन श्रीमाँ को प्रणाम कर स्वामीजी ने कहा था, 'माँ, मैं इतना भर जानता हूँ कि तुम्हारे आशीर्वाद से मेरे समान तुम्हारे अनेक नरेनों का उद्‌भव होगा, शत-शत विवेकानन्दों का उद्‌भव होगा। किन्तु इसके साथ ही मैं यह भी जानता हूँ कि तुम्हारे समान माँ जगत् में एक ही है, कोई दूसरी नहीं।'

भगिनी निवेदिता :

स्टेट्समैन पत्रिका के सम्पादक तथा प्रख्यात समाज विज्ञानी मिस्टर एस.के. रैटक्लिफ की पत्नी को लिखे एक पत्र में निवेदिता ने लिखा था : 'मेरी धारणा में (सारदादेवी) वर्तमान पृथ्वी की महानतम नारी हैं।'

'The Master As I Saw Him' ग्रन्थ में लिखा है : 'भारतीय नारीत्व के आदर्श के विषय में श्रीरामकृष्ण की चरमवाणी हैं - सारदादेवी। किन्तु क्या वे प्राचीन आदर्श की शेष बात हैं, या कि नवीन आदर्श की

प्रथम अभिव्यक्ति?' (अर्थात् वे दोनों ही हैं।)

एक पत्र में निवेदिता ने श्रीमाँ को लिखा था :'प्यारी माँ, स्नेह से लबालब हो तुम ! ... सचमुच तुम ईश्वर की अपूर्वतम सृष्टि हो। तुम श्रीरामकृष्ण के विश्वप्रेम की स्वयं धारयित्री हो—जो स्मृतिचिह्न वे अपनी सन्तानों के लिए छोड़ गये हैं।'

इस पुस्तक के संकलन में हमने मुख्यत: स्वामी गम्भीरानन्द रचित 'श्रीमाँ सारदादेवी' तथा स्वामी लोकेश्वरानन्द सम्पादित 'शतरूपे सारदा' इन दो पुस्तकों की सहायता ली है। इसके अलावा सहायता ली है 'उद्बोधन' पत्रिका की एवं स्वामी पूर्णात्मानन्द सम्पादित पुस्तक 'श्रीश्रीमायेर पदप्रान्ते' की।

● माँ-ठकुरानी क्या वस्तु हैं समझ नहीं पाए, अभी कोई भी नहीं समझ पाएगा, धीरे-धीरे समझ में आएगा। शक्ति के बिना जगत् का उद्धार नहीं होगा। हमारा देश सबसे अधम क्यों है, शक्तिहीन क्यों है?—वहाँ शक्ति की अवमानना होती है, इसलिए। माँ-ठकुरानी भारत में पुनः महाशक्ति को जगाने आई हैं, उनका अवलम्बन कर फिर से सब गार्गी, मैत्रेयी, जगत् में जन्म लेंगी।

● माँ, मैं इतना भर जानता हूँ कि तुम्हारे आशीर्वाद से मेरे समान तुम्हारे अनेक नरेनों का उद्भव होगा, शत-शत विवेकानन्दों का उद्भव होगा। किन्तु इसके साथ ही मैं यह भी जानता हूँ कि तुम्हारे समान माँ जगत् में एक ही है, कोई दूसरी नहीं।

—स्वामी विवेकानन्द

● प्यारी माँ, स्नेह से लबालब हो तुम। तुम्हारे स्नेह में हमारे जैसा उच्छ्वास या उग्रता नहीं है, वह पृथ्वी का प्रेम नहीं, स्निग्ध शान्ति है जो सभी का कल्याण करती है, किसी का अमंगल नहीं करती। जिसमें स्वर्णिम आलोक भरा है, खेल भरा है। ... सचमुच तुम ईश्वर की अपूर्वतम सृष्टि हो।

—भगिनी निवेदिता

● (श्रीमाँ के देहत्याग के पश्चात्) उस निर्भीक, शान्त, तेजस्वी जीवन का दीप बुझ गया—आधुनिक हिन्दू नारी के लिए छोड़ गया आगामी तीन हजार वर्षों में नारी को जिस महिमामय अवस्था में विकसित होना है, उसका आदर्श !

—मिस मैक्लाउड



THE RAMAKRISHNA MISSION INSTITUTE OF CULTURE

Rs. 5.00
email : rmic@vsnl.com
website : www.sriramakrishna.org

